उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता (भाग 2)

द्वितीय सत्र (MAHL 505)

विशेषज्ञ समिति

प्रो.एच.पी. शुक्ला निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. लक्ष्मण सिंह बिष्ट 'बटरोही' निदेशक, महादेवी वर्मा सृजन पीठ, रामगढ़, नैनीताल
प्रो एस.डी.तिवारी. विभागाध्यक्ष, हिन्दी गढवाल विश्वविद्यालय, गढ़वाल	डा. जितेन्द्र श्रीवास्तव हिंदी विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विवि.दिल्ली
प्रो.डी.एस.पोखरिया विभागाध्यक्ष, हिन्दी कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,	प्रो.नीरजा टंडन हिन्दी विभाग कुमाऊं विश्वविद्यालय नैनीताल,

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डा.राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	**डा.शशांक शुक्ला** असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाएं विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता MAHL 505

इकाई लेखक	इकाई संख्या
डा. आलोक कुमार सिंह हिंदी विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नई टिहरी, टिहरी, गढ़वाल-249001	9,10,11,12,13,14
डा. शीला रजवार नैनीताल	15,16
डा. अम्बुज पाण्डेय हिंदी विभाग के.वी. डिग्री कालेज, मीरजापुर उ0प्र0	17

कापीराइट©उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: जून, 2012 पुनर्संस्करण - 2022

प्रकाशकः निदेशालय, अध्ययन एवं प्रकाशन

mail : studies@uou.ac.in

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी ,नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-67-0

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी

द्वितीय सत्र हेतु –

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता भाग दो

MAHL 505

खण्ड – 3आदिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना	**पृष्ठ संख्या**
इकाई – 9आदिकालीन सिद्ध साहित्य: परिचय एवं स्वरूप	139-155
इकाई – 10आदिकालीन सिद्ध साहित्य : पाठ एवं परिचय	156-171
इकाई – 11आदिकालीन नाथ साहित्य : परिचय एवं स्वरूप	172-186
इकाई – 12आदिकालीन नाथ साहित्य : पाठ एवं परिचय	187-20
इकाई – 13आदिकालीन जैन साहित्य: परिचय एवं स्वरूप	203-216
इकाई – 14आदिकालीन जैन साहित्य : पाठ एवं परिचय	217-233

खण्ड 4 – आदिकालीन कविता : लौकिक साहित्य	**पृष्ठ संख्या**
इकाई – 15विद्यापति : परिचय एवं पाठ	234-251
इकाई 16 – विद्यापति : साहित्य एवं आलोचना	252-271
इकाई 17 – अमीर खुसरो : परिचय, पाठ और आलोचना	272-287

द्वितीय सत्र हेतु MAHL 505

हिन्दी साहित्य का इतिहास और आदिकालीन कविता भाग दो

खण्ड – 3आदिकालीन कविता : पाठ एवं आलोचना	पृष्ठ संख्या
इकाई – 9आदिकालीन सिद्ध साहित्य: परिचय एवं स्वरूप	139-155
इकाई – 10आदिकालीन सिद्ध साहित्य : पाठ एवं परिचय	156-171
इकाई – 11आदिकालीन नाथ साहित्य : परिचय एवं स्वरूप	172-186
इकाई – 12आदिकालीन नाथ साहित्य : पाठ एवं परिचय	187-20
इकाई – 13आदिकालीन जैन साहित्य: परिचय एवं स्वरूप	203-216
इकाई – 14आदिकालीन जैन साहित्य : पाठ एवं परिचय	217-233
खण्ड 4 – आदिकालीन कविता : लौकिक साहित्य	**पृष्ठ संख्या**
इकाई – 15विद्यापति : परिचय एवं पाठ	234-251
इकाई 16 – विद्यापति : साहित्य एवं आलोचना	252-271
इकाई 17 – अमीर खुसरो : परिचय, पाठ और आलोचना	272-287

इकाई 9 आदिकालीन सिद्ध साहित्य : परिचय एवं स्वरूप

9.1 प्रस्तावना
9.2 उददेश्य
9.3 नाथ सम्प्रदाय
9.4 आदिकालीन नाथ साहित्य
9.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु
9.4.2 भाषा-शैली
9.4.3 प्रमुख नाथ कवि
9.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
9.6 सारांश
9.7 शब्दावली
9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
9.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं।

नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्वति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नाथ सम्प्रदाय की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
- आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- परवर्ती भक्तिकालीन हिंदी साहित्य (निर्गुण या संत काव्य) पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव की पहचान कर सकेंगे।

9.3 नाथ सम्प्रदाय

इससे पहले की इकाइयों में आपने आदिकालीन सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। नाथों का समय इन सिद्धों से थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे, जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से में (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को 'सिद्धमत', 'सिद्धमार्ग', 'योगमार्ग', 'योग सम्प्रदाय' तथा 'अवधूत मत' भी कहा गया है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार -

"सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ-वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।"

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें "नवनाथ'' के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं-आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आंरभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग का रहस्य बतलाया था। मत्स्येन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय-सुख में बँध जाने का श्राप दे दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना-पद्धति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रराय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से "हठयोग" रूपी साधना-पद्धति का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक पवित्रता को अपनाने तथा मांस-मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था- "जोई-जोई पिंडे सोई ब्रहमांडे", अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-"शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शाक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प

करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। "नाथ" का अर्थ "मुक्तिदान करने वाला" माना गया है। जो स्वयं "मुक्त" होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य- भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय-निग्रह, प्राण-साधना और मन-साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण "नारी' को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण- साधना का स्थान है, अर्थात प्राण- वायु के नियमित संचालन का अभ्यास । मन-साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तः करण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी- संचालन और कुंडलिनी-जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था । सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालाँकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति-पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राहमण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति-परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई, जिसके सदस्य न तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच-नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार-प्रसार होने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रहमचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट(शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा- "गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।" लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चलता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतो के पास गई। डा. रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार-प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है-

''गोरखनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहॉ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।''

नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी 'कनफटे' कहलाते है, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाड़कर उसमें बड़ा छेद कर लेते है। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते है। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते है और पश्चिमी भारत मे रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते हैं।

यह पहले बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंदं शुक्ल ने लिखा है - "अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर 'कलि में अमर राजा भरथरी' के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते है जो बंगाल में चटिगांव के राजा थे और जिनकी माता मैनावती कहीं गोरख की शिष्या और कहीं जलंधर की शिष्या कही गई हैं। "

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए-

(क) नाथों की संख्या.....मानी जाती है।

(ख) नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय.....को है।

(ग) नाथ योगी .....कहलाते हैं।

2 सत्य/असत्य बताइए-

(क) नाथ कवि मुख्यतः देश के पूर्वी भागों में रहते थे।

(ख) गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम पर अधिक जोर नहीं दिया।

(ग) नाथ ईश्वरवादी थे।

3 बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) सिद्धों की सूची में किसका नाम मिलता है-

(क) चौरंगीनाथ (ख) चर्पटनाथ

(ग) भर्तृनाथ (घ) गोरखनाथ

(ब) 'हठयोग' का प्रवर्त्तन किसने किया-

(क) आदिनाथ (ख) मत्स्येन्द्रनाथ

(ग) गाहिणीनाथ (घ) गोरखनाथ

(स) नाथ योगियों की साधना पद्वति का अंग नहीं है-

(क) इंद्रिय -संयम (ख) उपवास

(ग) प्राण-साधना (घ) मन-साधना

9.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

इससे पूर्व के खंड में आपने नाथ सम्प्रदाय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया। आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप् से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा-शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों से आपका परिचय कराया जाएगा।

9.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतो का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य-संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं। नाथों

ने तीन बातों पर जोर दिया है- (1) योगमार्ग (2) गुरू महिमा (9) पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोंपासना के बाहरी तौर-तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य-समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता- नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।

ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

नाथ साहित्य मे साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है, जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव-मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे।

9.4.2. भाषा-शैली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाथ पंथ का अधिक प्रचार-प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ । इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है- "इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक 'सधुक्कड़ी' भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।"

यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु-संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों

की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को 'सधुक्कड़ी' भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता हैं। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा अनुयायी जहाँ-जहाँ गए वहाँ के लोगो के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डा0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं, उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग-आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें 'शब्द' या 'सबदी' कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन-शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोक या जनसामान्य में विश्वसनीय ढंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती हैं।

9.4.3 प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं- मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहाँ कुछ नाथ कवियों का परिचय दिया जा रहा है-

मत्स्येन्द्रनाथ - मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग-विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग-विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है-

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।

जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कहे मत्स्येन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ - गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्धानों की अलग-अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई. माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ0 रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। समान्यतः उन्हें कांगड़ा-निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौल्या उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्वि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र-साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षक भी माना जाता है। गोरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना-पद्वति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु-संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों-आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी। यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बँटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत-सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं। मिश्र बंधुओं के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ हैं, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है । उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध हैं, लेकिन उनमें से कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम है- 'सिद्ध सिद्वांत पद्वति', 'गोरक्ष संहिता' 'अमरौध-शासनम' 'विवेकमार्तण्ड', 'निंरजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन',। इनकी देश भाषा की रचनाएँ

भी मिलती है। डॉ.पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है- 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि' 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथजी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएँ उनकी ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्वांत-ग्रंथो की रचना करने के साथ-साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया। इनकी कविता का उदाहरण है-

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।

गोरस कहै ते परतसि चूहड़ा।।

काछ का जती मुख का सती।

सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ:-पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है-

पहलै पहरै सब कोई जागै, दूजै पहरै भोगी।
तीजै पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी।।

चर्पटनाथ:- ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है-

किसका बेटा किसकी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जेता पूला तेती आल,

चरपट कहै सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ:- चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखें फोड़ दी गईं और हाथ-पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला। इनकी कविता का उदाहरण है-

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियों के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

1. अभ्यास प्रश्न

(1) रिक्त स्थान भरिए

(क) उलटबाँसी में .....का प्रयोग होता है।

(ख) गोरखनाथ के गुरू ..... थे।

(ग) नाथ कवियों की भाषा को .....भाषा कहा जाता है।

(2) सत्य/असत्य बताइए

(क) गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।

(ख) नाथ कवियों ने वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को आवश्यक बताया है।

(ग) 'सघुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है।

(घ) डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन किया है।

(9) बहुविकल्पीय प्रश्न

(अ) नाथ साहित्य में किसकी चर्चा नहीं मिलती है-

(क) नारी साहचर्य (ख) गुरू महिमा

(ग) बाह्याचारों का विरोध (घ) वैराग्य

(ब) नाथ साहित्य में क्या नहीं मिलता है-

(क) साखी (ख) उलटबाँसी

(ग) सबदी (घ) सोहर

(स) गोरखनाथ की रचना नहीं है-

(क) सिद्ध-सिद्धांत पद्धति (ख) बीजक

(ग) सबदी (घ) वैराट पुराण

9.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्त्व के साथ-साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्धति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-'' यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतो की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्व धर्म के अंतिम सिद्वों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।''

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के जरिए 'अनहद' नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलटबाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने लिखा है-''हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं- एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति-धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।'' नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो

आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र-तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय-निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रूढ़ियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले नाथ योगियों की बानियाँ भी कही गईं । वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के 'धर्म निरूपणपरक' दोहे ही 'साखी' कहे जाते हैं। 'साखी' नाथपंथ के साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतो के साहित्य में भी। 'साखी' का अर्थ है- साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे-धीरे गुरू के वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे। इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' और 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर-साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतो के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है- ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कडी' भाषा भी"। सिद्वों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी-न-किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदों को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-''जान पड़ता है, बीजक का 'शब्द' नाथपंथी योगियों का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।"

भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबाँसियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया था। हालाँकि उनमें कहीं-कहीं थोड़ा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उदाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है . नाथयोगियों का पद-

उठ्या सारन् बैठ्या सारन् सारन् जागत सूता ।

तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि रे पूता।।

दादू का पद-

उठ्या सारं बैठ विचारं संभारं जागता सूता।

तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है- 'नाथ बोलै अमृत बाणी। बरिसैगी कंबली भीजैगा पाणी। 'यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है- 'बरसै कंबल भीजै पानी।' इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालाँकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों-नाथों की कविता में नहीं मिलता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की मान्यताओं और साधना पद्धति में संशोधन करके नाथपंथी योगियों ने भक्तिकालीन संतों के लिए विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। नाथ सम्प्रदाय को वास्तव में सिद्धों और संतों के बीच की कड़ी माना जाता है। डॉ. रामकुमार वर्मा की राय में -''संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को, मध्य नाथपंथियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारंभ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए।''

3. अभ्यास प्रश्न

(1) भक्तिकालीन संतकाव्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव के विषय में क्या असत्य है-

(क) माया की अवहेलना

(ख) अंतस्साधनात्मक रहस्यवाद

(ग) उलटबाँसियो का प्रयोग

(घ) भक्ति का तत्त्व

9.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की भोगप्रधान तांत्रिक साधना पद्वति तथा मान्यताओं में संशोधन करके गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम तथा सदाचार पर

आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्वति का प्रसार-प्रचार किया। आदिकालीन नाथ साहित्य में नाथ सम्प्रदाय की इस साधना पद्वति के निरूपण के साथ-साथ बाह्याचार तथा रूढ़ियों का खंडन भी किया गया है। नाथ साहित्य ने परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य को विषयवस्तु तथा शैली, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप और महत्त्व से परिचित हो चुके हैं।

9.7 शब्दावली

हठयोग- 'सिद्ध-सिद्धांत पद्वति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। सूर्य और चंद्र क्रमशः दक्षिण और वाम स्वर के प्रतीक हैं। हठयोग में देह स्थित 'ह' अर्थात् ज्ञान, प्रकाश और शक्ति के वाचक सूर्य तथा 'ठ' अर्थात् आनंद, रस तथा शीतलता के वाचक चंद्र की संयुक्त साधना की जाती है। इस साधना का स्वरूप आंतरिक होता है।

अंतस्साधना- हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आंतरिक साधना पद्वति।

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना- मेरूदंड में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें योग की दृष्टि से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा नाड़ी बाईं ओर तथा पिंगला नाड़ी दाहिनीं ओर स्थित होती है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इसलिए योग साधना में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी मानी जाती है। इड़ा के लिए चंद्र, गंगा आदि प्रतीकों का; पिंगला के लिए सूर्य, यमुना आदि प्रतीकों का तथा सुषुम्ना के लिए अवधूती, सरस्वती, बंकनालि आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

षट्चक्र-भेदन- कुंडलिनी द्वारा मेरूदंड के मूल से लेकर त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) तक क्रमशः स्थित छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्व और आज्ञा नामक चक्र - का भेदन करना। इसके बाद कुंडलिनी शून्य चक्र स्थित ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाती है।

अनाहत नाद- अरिवल ब्रह्मांड में अखंड भाव से व्याप्त नाद।

नाद- योगी की देह में स्थित कुंडलिनी जब सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई शीर्षस्थ चक्र में पहुँचती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं।

बिंदु - नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिंदु कहते हैं।

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नाथ सम्प्रदाय

1 (क) नौ (ख) गोरखनाथ (ग) कनफटा

2 (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

3 (घ) गोरखनाथ (घ) गोरखनाथ (ख) उपवास

2 आदिकालीन नाथ साहित्य

1 (क) असामान्य प्रतीकों (ख) मत्स्येन्द्रनाथ (ग) सघुक्कड़ी

2 (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य

(घ) सत्य

3 (क) नारी साहचर्य (घ) सोहर (ख) बीजक

परवर्ती हिंदी साहित्य पर प्रभाव

1 (घ) भक्ति का तत्त्व

9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ0 रामकुमार वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

2. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली,2002

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी, सम्वत्,2058 वि0

4. डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, (सं0) डॉ0 गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

5. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ल, 2006

6. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली,2010

9.10 उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली,1995

2. हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद,1945

9.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका पर प्रकाश डालें।

2. आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं का परिचय दें।

3. परवर्ती हिन्दी साहित्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करें।

इकाई 10 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठ एवं परिचय

इकाई का स्वरूप

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ
10.4 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः सैद्धान्तिक पाठ
10.5 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः गैर-सैद्धान्तिक पाठ
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
10.10 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह दूसरी इकाई है। इसके पहले की इकाई में आपने सिद्धो की परम्परा और मान्यताओं के विषय में जाना। इसके अलावा आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य और प्रमुख सिद्ध कवियों से परिचित हो चुके है। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषताओ से आपका परिचय कराया जा रहा है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सिद्ध साहित्य में व्यक्त विचारों को जान सकेंगें और परवर्ती हिंदी साहित्य की प्रवृतियों से इसके संबंध की पहचान कर सकेंगें।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- आदिकालीन सिद्ध कवियों की कविता में उपस्थित सैद्धांतिक मान्यताओं और रुढि-विरोधी विचारो से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन सिद्ध कवियो की रचनाओ की भाषा एवं शिल्प संबंधी विशेषताओ को जान सकेंगे।

10.3 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

जैसा कि आप जानते हैं कि सिद्धों की संख्या 84 मानी गयी है। इन 84 सिद्धों में भी सरहपा, कण्हण्पा, लुइपा, डोम्बिपा आदि की रचनाएँ ही साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इससे पहले की इकाई में आप यह पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में रहस्यवाद संबंधी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने के साथ-साथ वाह्याचारों, कर्मकांडों, पाखण्डों तथा धार्मिक रूढ़ियों का विरोध भी किया गया है एवं उन्होंने सहज जीवन पर बल दिया है। सिद्ध साहित्य में तत्कालीन समाज में धर्म के नाम पर प्रचलित वाह्याडम्बरों, कर्मकाण्डो आदि का विरोध मिलता है। वर्णाश्रम व्यवस्था के आधार पर ऊंच-नीच तथा छुआ-छूत का भी उन्होंने विरोध किया और जीवन में निवृति के स्थान पर प्रवृति के महत्व का प्रतिपादन किया। सहज जीवन जीते हुये महासुख को प्राप्त करना उनकी साधना का लक्ष्य था, यद्यपि स्वयं सिद्ध साहित्य की शब्दावली में षटचक्र, नाड़ीविधान, शून्य गगन, सुरति-निरति जैसे रहस्यवादी प्रतीक भी मिलते हैं । साहित्यिक प्रवृतियों,भाषागत विशेषताओ तथा काव्य

रुप की दृष्टि से सिद्ध साहित्य महत्वपूर्ण है। क्योंकि भक्तिकालीन निर्गुण संतो की अनेक काव्य प्रवृतियों की आधारभूमि सिद्ध साहित्य प्रदान करता है । इस प्रकार सिद्ध कवियो की रचनाओं को सैद्धांतिक और गैर-सैंद्धांतिक कोटियो में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है।

सिद्धों का साहित्य दोहो और चौपाइयों के रुप में उपलब्ध होता है। दोहो में सिद्धो ने महासुख का वर्णन , वर्णाश्रम व्यवस्था आदि का विरोध किया और अपनी साधनात्मक अनुभूति को अभिव्यक्त किया। वहीं चर्यापद वे गीत होते थे जो सामान्यतः अनुष्ठानों के समय गाये जाते थे। चर्यापद संध्याभाषा के कूटपदो में लिखी गयी है और उनमें भी सिद्धों की रहस्यात्मक अनुभूति अभिव्यक्त हुई है। भाषा की दृष्टि से भी दोहों और चर्यागीतों की भाषा में पर्याप्त भेद दिखता है। दोहों की रचना परिनिष्ठित अपभ्रंश में हुई है जबकि चर्यापदों की अवहट्ठ में या कहें कि चर्यापदों में अपभ्रंश भाषा का वह रुप मिलता है जो देशभाषा मिश्रित है अर्थात हिन्दी की तरफ विकसित होती हुई अपभ्रंश। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि यही भेद आगे चलकर कबीर की 'साखी' और 'रमैनी' (गीत) की भाषा में मिलता है। साखी की भाषा तो खड़ी बोली राजस्थानी मिश्रित सामान्य 'सधुक्कड़ी' है पर रमैनी के पदो की भाषा में काब्य की भाषा ब्रजभाषा और कहीं-कहीं पूरबी बोली है। इस इकाई के अगले दो खण्डो में आपका परिचय आदिकालीन सिद्धसाहित्य के सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक पाठो से करवाया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न -

(1) सिद्ध कवियों ने किस पर बल नहीं दिया है-

(क) काया तीर्थ (ख) सहज जीवन (ग) पाखंड खण्डन (घ) ब्रह्मचर्य

10.4 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः सैद्धान्तिक पाठ

अलियो ! धम्म महासुह पइसइ। लवणो जिमि पाणीहि विलिज्जइ।।

मन्तह मन्ते सन्तिण होइ । पडिलमिति की उट्ठिउ होइ।।

तरुफल दरिसण ठाउ अन्धाइ। वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ।।

जावण आप जणिज्जइ । ताव ण सिस्स करेई ।।

अंधा-अन्ध कदाव तिम। तेण्ण वि कूत पडेइ।। (सरहपा)

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करते हुए कहते है कि सिद्ध साधना का लक्ष्य महासुख में प्रवेश पाना है। वे कहते हैं कि धर्म महासुख में प्रवेश पाना ही साधना का लक्ष्य है किन्तु इस महासुख की प्राप्ति के लिए वाह्याचारों एवं कर्मकाण्डों की आवश्यकता नहीं है। बल्कि जिस प्रकार नमक पानी में घुलकर अपनी पृथक सत्ता को समाप्त कर देता है, दोनो एकमेक हो जाते है उसी प्रकार ससीम ‘‘मैं’’ को असीम परमचेतना में मिलाकर ही महासुख की प्राप्ति हो सकती है। वाह्याचारों का पालन करने से यह सम्भव नहीं। मंत्रों के जपने से शांति की प्राप्ति नहीं होती तो महासुख की उपलव्धि क्या होगी। जैसे वृक्ष पर लगे फलों को देखने मात्र से ही भूख शान्त नही होती, वैद्य को देखकर रोगी रोगमुक्त नही हो जाता वैसे ही मंत्रादि के जाप से महासुख को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। क्योंकि इस प्रकार के वाह्याचारों में सुख और सुख को प्राप्त करने वाला जीव और कर्मचेतना दोनो की द्वैत स्थिति बनी रहती है, जबकि महासुख की प्राप्ति के लिए द्वैत नहीं अद्वैत को प्राप्त करना पड़ता है। साधक को अपने को मिटाकर महासुख रुपी महाचेतना में उसी प्रकार निमग्न होना पड़ेगा जैसे कि नमक पानी में घुलकर अपने अस्तित्त्व को मिटा डालता है।

अन्तिम पंक्ति में सरहपा अपने समाज में फैली तथाकथित गुरु-शिष्य परम्परा पर व्यंग्योक्ति करते हुए कहते हैं कि जब तक इस महासुख के रहस्य को स्वयं न जान लिया जाय तब तक किसी को शिष्य नहीं बनाना चाहिए। जबकि लोग ऐसा ही कर रहे हैं। वे स्वयं महासुख के रहस्य को तो जानते तक नहीं और गुरु बनकर शिष्य बना रहे है। यह ऐसा ही है जैसा कि अन्धा अन्धे को अन्धकार से निकालने का प्रयत्न कर रहा हो। ऐसे में स्वाभाविक ही है कि दोनों अन्धकार से निकलने की अपेक्षा गहरे अंधकूप में गिर जायेंगे। ऐसे गुरु को और ऐसे शिष्य को महासुख रुपी प्रकाश की झलक प्राप्त नहीं हो सकती है।

इस प्रकार सरहपा ने रहस्यवाद की अभिव्यक्ति करते हुए तद्युगीन समाज में फैले वाहयचारों, कर्मकाण्डों और तथाकथित गुरु शिष्य परम्परा की निरर्थता पर व्यंग्योक्ति के माध्यम से चोट की है।

संक पाश तोडहु गुरु पहणे। ण सुनइ सोणउ दीअइ णअणे।।

पवण वहन्ते णउ सो हल्लइ। जलण जलन्ते णउ सो उज्झइ।।

घण वरिसन्ते णउ सो तिम्मइ। ण उबज्जहि णउ खअहि पइस्सइ।।

णउ तं बाअहि गुरु कह्इ , णउ तं बुज्झइ सीस।

सहजामिअ-रसु सअल जगु, कासु कहिज्जइ कीस।।

सअ-संवित्ति तत्तफलु, सरहापा अ भणन्ति।

जो मण गोअर पाविअइ, सो परमत्थ ण होन्ति। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा उस परम तत्त्व के सूक्ष्म, अगम, अगोचर रुप को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि जिसे वास्तविक गुरु मिल गया हो और गुरु कृपा से जिसके बंधन टूट गये हों वही साधक उस परम तत्त्व को प्राप्त कर सकता है। वह परम तत्त्व हमारी इंन्द्रियो से परे है अर्थात उसे न सुना जा सकता है न नेत्रों से देखा जा सकता है। वह इंद्रियों के लिए अगम और अगोचर है। वह तत्त्व हवा चलने से न हिलता है न अग्नि ही उसे जला सकती है और न ही वह बादलों के बरसने से भीगता है। वह परमतत्त्व न तो कभी पैदा होता है न उसका कभी क्षय होता है अर्थात वह अनादि है और अनन्त है।

उस परम तत्त्व की प्राप्ति के " महासुख " को न गुरु अपनी वाणी से कह सकता है न उसे किसी शिष्य के द्वारा बूझा जा सकता है। उस सकल संसार के सहजामृत के स्वरुप व अनुभूति को किसी भी प्रकार व्यक्त नहीं किया जा सकता है। सिद्ध कवि सरहपा कहते हैं कि वह तत्त्व स्वयं संवेद्य है अर्थात उसकी अनुभूति स्वयं के द्वारा ही की जा सकती है। वह मन वाणी के लिए अगोचर है। वह अनुभूति का विषय है, उसे व्यक्त नहीं किया जा सकता यदि वह बताया जा सकने वाला तत्त्व होता तो उसे बताकर परमार्थ प्राप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार सरहपा ने उस परमतत्त्व को अगम अगोचर कहकर उसे अनुभूति का विषय माना है, न कि अभिव्यक्ति का। उस तत्त्व की केवल झलक प्राप्त की जा सकती है। वह गूंगे के गुड़ के समान है। कबीर की कविता में भी परमतत्त्व को इसी रुप में अभिव्यक्त किया गया है -

पारब्रह्म के तेज का कैसो है उन्मान

कहिबे को सोभा नही, देख्या ही परवान।।

जाकै मुंह माथा नहीं, नहीं रुप अरुप

पुहुप वास तै पातरा ऐसा तत्त्व अनूप।।

सुन-करुण अभिन्ने चारे काअवाचीए।

विलसइ दारिक गअणत परिमकूले।।

अलक्स लक्खइ चिए महासुहे।

विलसइ दारिअ गअणत परिम कूले।।

कन्तो मन्तो किन्तो तन्तो किन्तो झाण बखाणे।

अप्प पइठा महासुख लीलें दुलक्ख परम निवाणे।।

दुःखे सुक्खे एकू करिआ भु´जइ इन्द जानी।

स्वपरापर न चेवइ दारिक सअलानुत्तर मानी।।

राआ,राआ राआ रे अवर राआ मोहे बाधा।

लुइपाए-पए दारिक द्वादस भुअणे लाधा। (दारिकपा)

अर्थ- सिद्ध कवि दारिकपा की उपर्युक्त पंक्तियां चर्यागीत की उदाहरण हैं। दारिकपा परम महासुख की प्राप्ति की दशा का वर्णन करते हुये कहते है कि महासुख प्राप्ति की दशा में शून्य दशा प्राप्त होने पर काया, वाणी और चेतना अभिन्न होकर उस दशा में जा पहुंचती है, जहॉ शून्य करुणा गगन में विराजमान है अर्थात साधक जब कुंडलिनी को सहस्रार चक्र में पंहुचा देता है तब उस शून्य गगन में करुणा विलसती रहती है। और वह जिसे देखा नहीं जा सकता है। उस परमतत्त्व को देखने में समर्थ हो जाती है और चेतना महासुख की अनुभूति करती है। उस परम महासुख को तंत्र, मंत्र, ध्यान के बखान से प्राप्त नहीं किया जा सकता। वहां तो शून्य शिखर पर साधक को स्वयं प्रवेश करके उस दुर्लभ परम निर्वाण को प्राप्त करना पड़ता है। उस परम निर्वाण या महासुख की दशा में साधक के सांसारिक दुख-सुख, बाधाओं तथा मोह का स्वयं ही अन्त हो जाता है। दारिकपा कहते है कि सांसारिक राज-पाठ के मोह में बंधा मनुष्य उस दशा को प्राप्त होते ही बारह भुवनों का स्वामी हो जाता है अर्थात उसके के लिए कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता है।

साधना की शब्दावली के प्रयोग से साधनात्मक रहस्यवाद इन पंक्तियो में देखा जा सकता है। शून्य शिखर, गगन आदि शब्द अन्तःसाधना के शब्द हैं। आगे चलकर संत कवियों ने भी अपने साधनात्मक रहस्यवाद की अभिव्यक्ति में योग साधना के प्रतीको का प्रयोग किया है। उदाहरण के तौर पर कबीर की इन पंक्तियों को देखा जा सकता है-

अगम अगोचर गमि नाहि, वहाँ जगमगै जोति।

जहाँ कबीरा बंदिगी, तहाँ पाप पुन्य नहीं होति।।

सायर नहीं सीप बिन, स्वाति बूंद भी नाहिं।

कबीरा मोती उपजै, सुन्नि सिषर गढ़ मांहि।।

जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह प्रवेश।

तहि गढ चित्त विसाम करु, सरेह कहिअ उवेस।।

आदि ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिब्बाण।

एहँ सो परममहासुह, णउ पर णउ अप्पाण।।

सअ संविति म करहु रे धन्धा। भावभाव सुगति रे बन्धा।

णिअ मण मुणहुरे णिउणों जोइ। जिम जल जलहि मिलन्ते सो। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा परम तत्त्व की सूक्ष्मता को व्यक्त करते हुए कहते है कि वह परम तत्त्व सहस्रार चक्र की ऐसी गुफा में स्थित है जहां मन और वायु दोनो का संचार नही हो सकता। वहां सूर्य और चन्द्रमा भी प्रवेश नही कर सकते। वे कहते हैं कि चेतना को उसी परमतत्त्व को पाकर विश्राम करना चाहिए। उस परमतत्त्व का न प्रांरम्भ है न अन्त और न मध्य। वह कभी न पैदा होता है और न कभी उसका अन्त होता है। वह परम शाश्वत है, अर्थात आदि और अन्त से परे है। इसलिए चेतना को सांसारिक क्षणभंगुर सुखों की प्राप्ति का प्रयास न कर उस शाश्वत परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। तभी उसे परम महासुख की प्राप्ति हो सकती है। अन्यथा साधक सांसारिक, क्षणभंगुर मिथ्या सुखो की खोज में भटकता रहेगा।

वह परम महासुख स्वयं संवेद्य है। उसे प्राप्त कर साधक भाव और अभाव से परे हो जाता है। निपुण कुशल योगी उस परमतत्त्व को अपने मन में ध्यान कर प्राप्त करते हैं । जैसे जल, जल में मिलकर अपनी पृथक सत्ता को खो देता है, दूसरे जल से मिलकर अभिन्न हो जाता है। उसी प्रकार साधक योगी भी साधना के द्वारा उस परम तत्त्व को प्राप्त कर अपनी ससीम सत्ता खोकर असीम हो जाता है । अर्थात वह स्वयं परम महास्वरुप हो जाता है। उसे भेद में अभेद की प्रतीति हो जाती है। वह सुखमय, आनन्दमय हो जाता है।

काअ नावड़ि खन्टि मण केडुआल। सदगुरु वअणे घर पतवाल।।

चीअ थिर करि धरहु रे नाई। अण्ण उपाए पार न जाइ।।

नौवहि नौका टानअ गुणे। निर्मलि सहजे जाउ ण आणे।।

बाटत भअ खान्ट बी बलआ। भव उल्लोले सब्ब वि वलिआ।।

कूल लई खरे स्रोते बहाय। सरहा भणइ गअणे समाय।। (सरहपा)

अर्थ- उपर्युक पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा सहज मार्ग का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहते हैं, कि इस संसार रुपी समुद्र में मनुष्य की देह एक छोटी सी नौका के समान है। मन पतवार के समान है। चूँकि मन चंचल होता है और किसी भी वस्तु से उसकी तृप्ति नही होती है इसलिए चंचल मन रुपी पतवार से मनुष्य की देह रुपी नौका संसार सागर में निंरतर आकर्षणों में फंसी इधर-उधर डोलती रहती है और अपनी यात्रा कभी भी पूरी नही कर सकती । ऐसी स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय है कि सतगुरु के वचन रुपी पतवार से अपनी जीवन नौका को खेना चाहिए। अपनी चेतना को स्थिर करके सदगुरु के वचनों का आसरा लेने के अतिरिक्त किसी भी अन्य उपाय के द्वारा जीवन नौका को संसार-समुद्र के पार नहीं ले जाया जा सकता। इस संसार -समुद्र में चंचल मन अपने गुण रुपी रस्से से देह रुपी नौका को खींचता रहता है और संसार -समुद्र के तूफानों में नाव फंसी रह जाती है। वह कई धाराओं और प्रखर स्रोतों में फंसकर अपनी जीवनी शक्ति का क्षय कर लेती है। कवि सरहपा कहते हैं कि सदगुरु के वचनों का आसरा लेकर ही जीवन रुपी नौका को शून्य गगन में ले जाया जा सकता है, यही सहज मार्ग है।

सहजे णिच्चल जेण किअ, समरसे निअन्मण राअ।

सिद्धे सो पुण तक्खणे, णउ जरमरणह स भाअ।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा सच्चे सिद्ध को परिभाषित करते हुए कहते है कि वही सच्चा सिद्ध है जिसने अपना मन समरसता में अनुरक्त करके निश्चल कर लिया है। ऐसे सिद्ध को जन्म मरण का भी भय नही होता। क्योंकि वह जीवन के द्वन्द्वो से ऊपर उठकर उन्हे समरस दृष्टि से देखने योग्य हो जाता है।

एहु सो गिरिवर कहिअ मइँ, एहु सो महासुह ठाव।

एक्कु रअणी सहज-खण, लब्भइ महसुह जाव।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा कहते हैं कि यहीं वह गिरिवर है और यही वह महासुख का ठिकाना है। सहज क्षण की एक ही रात्रि है जिससे महासुख प्राप्त होता हैं।

जिम लोण विलिज्जइ पाणिएहि, तिम धरिणि लाइ चित्त।

समरस जाइ तक्खणे, जइ पुणु ते सम णित्त।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा के अनुसार जिस प्रकार नमक पानी में विलीन हो जाता है उसी प्रकार यदि अपनी घरिणी अर्थात पत्नी को लेकर चित्त को समरस भाव में ले जाऐ तो समरसता प्राप्त हो सकती है। जिस प्रकार नमक पानी में अपने अस्तित्व को मिटा देता है उसी प्रकार यदि ज्ञान रूपी गृहिणी को लेकर चेतना समरस होतो उसी क्षण साधक नित्य समरसता को प्राप्त कर लेता है।

जिम विस भक्खइ, विसहि पलुत्ता।

तिम भव भु´जइ भवहि ण जुत्ता।।

खण आणंद भेउ जो जाणइ।

सो इह जम्माहि जोई भणिज्जइ।।

हँउ सुण्ण, जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण।

णिम्मल सहजै ण पाप ण पुण्ण।।

जहँ इच्छइ तहि जाउ मण। एत्थुण किज्जइ भन्ति।।

अध उधाडि आलोअणे झाणें होइ रे थित्ति।। (तिलोपा)

अर्थ- सिद्ध कवि तिलोपा संसार में भोग को त्यागने के बजाय भोगो को जागकर भोगने पर बल देते है। इस प्रकार वे संसार को त्यागने के स्थान पर संसार को स्वीकार कर, भोग कर उससे मुक्त होने की बात करते है। तिलोपा कहते हैं कि जिस प्रकार विष खा लेने पर विष से ही उसका उपचार किया जाता है, उसी प्रकार भोगों को त्यागने की अपेक्षा उन्हें भोग कर एवं जानकर ही उनसे मुक्त हुआ जा सकता है। इन्द्रियों के दमन द्वारा नहीं, अपितु भोगों को जानकर, भोगकर ही उन्हे जाना जा सकता है। इस संसार में आनंद क्षणो में ही है इसलिए उनका भोग क्षणो में ही करना चाहिए। यहॉ मनुष्य की सत्ता , संसार एवं त्रिभुवन की सत्ता शून्य है। निर्मल सहज चित्त के लिए न कुछ पाप है और न पुण्य। मनुष्य का मन इच्छाओं के अधीन है। चूँकि वह इच्छाओं के पीछे भागता है, इसलिए यह भ्रान्ति

नहीं रखनी चाहिए कि उसे संयमित करना संभव है। अपनी ऑंखो को खोलकर अर्थात अपने विवके एवं ज्ञान रुपी नेत्रो से अवलोकन कर, भोगों को भोगकर ही उनसे पृथक हुआ जा सकता है। ज्ञान विवेक रुपी आँखों से भोगो का अवलोकन करके ही ध्यान में स्थित हुआ जा सकता है, अन्यथा नहीं। इससे स्पष्ट होता है कि सिद्ध कवि सांसारिक सुखो के विरोधी नहीं है, बल्कि वे इन्द्रियों के दमन का विरोध करते है। वे संसार से पलायन को नहीं, बल्कि संसार के भोगों को जानकर उनसे विमुक्त हो जाने को उचित मानते है। इसीलिए सिद्ध कवि गृहस्थ जीवन के विरोधी नहीं है। इस रुप में सिद्ध कवि अपने काव्य में निवृति की अपेक्षा प्रवृति का प्रतिपादन करते हैं।

एत्थु से सुरसरि जमुणा, एत्थ सें गंगा साअरु।

एत्थु पआग वणारसि एत्थु सें चन्द दिवाअरु।।

खेत्तु-पीठ-उपपीठ,एत्थु मइँभमइ परिट्ठओ।

देहा- सरिसअ तित्थ मइँसुह अण्ण ण दिट्ठओ।। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा कहते हैं कि देह जैसा तीर्थ न मेंने सुना है और न ही देखा है। इसी देह रुपी तीर्थ में गंगा, यमुना और गंगा सागर भी है। यहीं प्रयाग और वाराणसी जैसे तीर्थ स्थित हैं। यही सूर्य और चंद्रमा भी विराजमान है। विभिन्न शक्ति पीठ, उपपीठ, पवित्र क्षेत्र भी देह रुपी तीर्थ में ही स्थित है। इसलिए मन रुपी भंवरे को इन्ही तीर्थो का भ्रमण करना चाहिए न कि बाहरी संसार में उपस्थित किसी तीर्थ का। सरहपा की राय में तीर्थो में स्नान, दानादि का कोई महत्व नहीं है। वास्तविक मुक्ति देह तीर्थ यात्रा में ही निहित है।

वस्तुतः अंतः साधना के क्रम में साधक अपनी कुँडलिनी को साधना के द्वारा जाग्रत कर मूलाधार चक्र से सहस्रार चक्र तक पहुँचाने का प्रयत्न करता है। सहस्रार चक्र में कुँडलिनी के पहुँचते ही साधक उस अखण्ड आनन्द का अनुभव करता है जो भारतीय आध्यात्मिक साधना का चरम लक्ष्य है। वहाँ अमृत की निरंतर वर्षा और अनहद नाद के संगीत को साधक निंरतर अनुभूत करता हुआ मुक्ति प्राप्त कर लेता है। कुँडलिनी जागरण के लिए साधक अपने श्वास-प्रश्वासों की विशेष क्रिया करता है। ऐसा माना गया है कि मनुष्य शरीर में इड़ा, पिगंला और सुषुम्ना तीन नाड़ियां हैं। इड़ा को चन्द्र और गंगा भी कहा गया है और पिगंला नाड़ी को सूर्य या यमुना भी कहा गया है, जबकि सुषुम्ना नाड़ी को सरस्वती की संज्ञा दी गयी है। जब साधक निरतंर प्रयासों से इडा और पिगंला नाड़ी को

सुषुम्ना नाड़ी से मिला लेता है तब कुँडलिनी शक्ति जाग्रत होकर धीरे धीरे छः चक्रो को भेदती हुई सिर के मध्य स्थित सहस्रार चक्र तक जा पहुचती है।

इस पद में देह में ही गंगा, यमुना और गंगा सागर जैसा तीर्थ होने का अर्थ है इडा , पिंगला नाड़ियों को साधकर सहस्रार चक्र में पहुँचना, अर्थात इड़ा नाड़ी गंगा है, पिंगला नाड़ी यमुना है और सहस्रार चक्र है गंगा सागर जहाँ पहुँच कर इन नदियों की यात्रा समाप्त हो जाती है और वे आनन्द सागर में मिल जाती है। भौतिक संसार में तो गंगा, यमुना और सरस्वती का मिलन प्रयाग में होता है, जो स्वयं एक बड़ा तीर्थस्थल है। ऐसा माना जाता है कि वहाँ स्नान करने से सभी पाप कट जाते हैं। किन्तु योग साधना में इड़ा रुपी गंगा, पिंगला रुपी यमुना का मिलन जब सुषुम्ना रुपी सरस्वती से होता है तो देह में ही प्रयाग और बनारस जैसे तीर्थ बन जाते हैं। विभिन्न क्षेत्र पीठ और शक्तिपीठों को शरीर स्थित विभिन्न चक्रों में स्थित बताया गया है। इसीलिए सरहपा कहते हैं कि यह देह स्वयं एक तीर्थ है। ध्यान योग द्वारा इसकी साध्ना करने से बाह्य तीर्थों में जाने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है। यद्यपि सिद्व कवियों ने सहज जीवन पर न जोर दिया तथापि उनकी कविता में भी शून्य शिखर, अमृत वर्षा, सूर्य चद्र जैसे हठयोग के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग मिलता है। धर्म के नाम पर तद्युगीन समाज में फैले पाखंडों, कुरीतियों वाह्याचारों का खंडन उन्होंने ध्यान योग के आधार पर ही किया है। नाथ संप्रदाय में भी माना गया है कि " जोई जोई पिण्डे सोई ब्रह्माण्डे " अर्थात जो इस देह रूपी पिंड में है वही ब्रह्माड में भी है। यह अकारण नही है कि 84 सिद्धों की सूची में कई नाथों के नाम भी मिलते हैं। इस साधनात्मक रहस्यवाद का विकास आगे चलकर कबीरादि संत कवियों में देखने को मिलता है। भावसाम्य के लिए कबीर की इन पंक्तियों को देखिए-

गंगा जमुना उर अंतरै, सहल संनिल्यौ घाट।

तहां कबीरा मठ रच्या, मुनि जन जौवे बाट।।

यहाँ गंगा, यमुना तो हठयोग की साधना के शब्द है ही सहज और शून्य तो सीधे-सीधे सिद्ध पंरपरा से ही आए हैं।

अभ्यास प्रश्न -

(1) " जहि मण पवण ण संचरई, रवि ससि णाह प्रवेश "

इस पंक्ति के रचनाकार कौन हैं?

(क) तिलोपा (ख) दारिकपा (ग) सरहपा (घ) कण्हपा

10.5 आदिकालीन सिद्ध साहित्यः गैर-सैद्धान्तिक पाठ

बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। एँवई पदिअउ ए चउबेउ।।

मट्टि पाणि कुस लइ पढन्त। धरहिं बइसी अग्गि हुणन्त।।

कज्जे विरहइ हूअवह होमें। अक्खि डहाविअ कढ़ुए धूयें।।

एकदण्डि त्रिदण्डी भअवाँ वेसें। विणुआ होंइअइ हंस उऐसे।।

मिच्छेहां जग वाहिअ भुल्ले। धम्माधम्म ण जाणिअ तुल्लें।।

अइरिएहूँ उद्दूलिअ छारें। सीस सु बाहिअ ए जडभारे।।

घरहि वइसी दीवा जाली। कोणहिं वइसी घण्टा चाली।।

अक्खि णिवेसी आसण बन्धी। कण्णेहिं खुसखुसाय जण धन्धी।।

दीहणखा जइ मलिणे वेसे। णग्गल होई उपाडिअ केसें।।

खवणेहि जाण-विडंविअ वेसें । अप्पण वाहिअ मोक्ख उवेसे।। (सरहपा)

अर्थ -सिद्ध कवि सरहपा की कविताओं में एक ओर अंतसाधना द्वारा महासुख की प्राप्ति की अनुभूतियों का वर्णन मिलता है, वहीं दूसरी ओर वर्णाश्रम व्यवस्था के आडम्बर, वाह्याचार एवं धर्म के नाम पर प्रचलित अतार्किक विधि-विधानों का खंडन भी मिलता है। प्रस्तुत पद में वे ब्राह्मण धर्म के रीति-रिवाजों का खण्डन करते हुए कहते हैं कि ब्राह्मण वस्तुतः धर्म के सूक्ष्म तत्त्व भेद को जानता तक ही, फिर भी बिना जाने वह वेदों को पढ़ता रहता है। वह मिट्टी, पानी और कुशा लेकर घर में बैठ कर यज्ञ की अग्नि में होम करता रहता है और अपनी आँखों को कडुए धुँए से कष्ट देता रहता है।

ये ब्राह्मण धर्म के वास्तविक और मिथ्या रुपों के बारे में हंस के समान नीर-क्षीर विवेक से शून्य होते हैं। धर्म क्या है ? और अधर्म क्या है ? , इसको जाने बिना ही ये भगवा भेष धारण कर माथे पर त्रिपुण्ड लगाए इस मिथ्या संसार के वाह्य स्वरुप में ही उलझे रहते हैं। कोई अपनी देह पर मृगछाला लपेट कर मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाये धारण करते हैं और घर के कोने में दीपक जलाकर घंटी बजाते है। कुछ आँख मूँद कर , आसन जमाकर, मन्द-मन्द स्वरों में फुसफुसाते हुए मंत्रों का जाप करते रहते हैं। कुछ अपने नाखूनों को बढ़ाकर नग्न होकर अपनी देह के केशो को उखाड़कर और

मलिन वेष धारण कर समझते हैं कि वे ज्ञान प्राप्त कर लेंगे। सरहपा कहते है कि वास्तव में इस प्रकार के साधनों को अपनाकर वे मोक्ष गंवा रहे हैं। सरहपा की दृष्टि में धर्म का मूल तत्त्व अति सूक्ष्म है, उसे सहज साधना मार्ग से ही पाया जा सकता है। उस तत्त्व की प्राप्ति में वाह्याचारों, कर्मकाण्डो की कोई आवश्यकता नहीं है, बल्कि ये वाह्य उपादान तो उस तत्त्व की प्राप्ति में बाधक ही हैं।

जई णग्गाविअ होई मुत्ति, ता सुणह सिआलह।

लोम उपाडण अत्थि सिद्धि, ता जुवइ-णिअम्बह।।

पिच्छि गहणे दिट्ठ मोक्ख, ता मोरह चमरह।

उच्छ भोजणे होइ जाण, ता करिह तुरंगहु।। (सरहपा)

अर्थ- सिद्ध कवि सरहपा कहते है यदि नंगा होने से मुक्ति मिलती, तो सियार और कुत्ते तो जन्म से ही नंगे हैं, उनकी मुक्ति तो कब की हो जानी चाहिए। यदि केशों को मुंडाने से मुक्ति मिलती तो युवतियों के नितम्ब तो स्वभावतः केशरहित हैं, पहले उन्हे मुक्ति मिल जानी चाहिए। यदि पीछे देखने से, अर्थात परंपरा के अनुकरण से ही मुक्ति मिलती तो मोर बार-बार पीछे मुड़कर अपने चमकीले पंखो को ही देखता रहता है। इसलिये सबसे पहले मोर को मुक्ति मिलनी चाहिए। इसी प्रकार यदि उच्छिष्ट भोजन करने से मुक्ति मिलती तो घोड़े आदि पशु तो उच्छिष्ट भोजन ही करते है उन्हें मुक्ति क्यों नहीं मिलती ?वास्तव में सरहपा का कहना यह है कि धर्म के नाम पर समाज में जो पांखड चल रहा है उस पाखंड का धर्म के वास्तविक तत्त्व से कोई सम्बन्ध नहीं है। उस तत्त्व को तो सहज साधना के मार्ग से ही पाया जा सकता है। आप देख सकते हैं कि सरहपा ने धर्म के नाम पर चल रहे पाखंडों का खंडन सहज स्वाभाविक रुप से सामान्य उदाहरणों के द्वारा किया है। आगे चलकर कुछ ऐसी ही पंक्तियां कबीर के यहाँ भी मिलती हैं-

मूंड मुँडाये हरि मिलै, हर कोई मूँड मुँडाये।

सौ बार के मूँडने, भेड़ न बैकुंठ जाय।।

तित्थ तपोवण म करहु सेवा। देह सुचीहि ण सन्ति पावा।।

बम्हा-विह्णु महेसुर देवा। बोहिसत्व मा करहू रे सेवा।।

देव ण पूजहू तित्थ ण जावा। देव पुजाही मोक्ख ण पावा।।

बुद्ध अराहहु अविकल चित्ते। भव णिब्बाणे ण करहु थित्ते। (तिलोपा)

अर्थ- सिद्ध कवि तिलोपा उपर्युक्त पंक्तियों में कहते हैं कि न तो तीर्थों तपोवनों में सेवा करने से, और न ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओं की उपासना करने से देह पवित्र होती है। इससे पापों का उन्मोचन भी नहीं होता है। देव पूजा और तीर्थों की यात्रा व्यर्थ है, क्योंकि इनसे व्यक्ति मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। मात्र अविकल चित्त से बुद्ध की आराधना करने से ही संसार से निर्वाण प्राप्त हो सकता है।

पंडित सअल सन्त बक्खाणइ। देहहि बुद्ध बसंत न जाणइ।

अमणागमण ण तेन विखंडिअ। तोवि णिलज्ज भणइ हउँ पंडिअ।। (सरहपा)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में सिद्ध कवि सरहपा अंतः साधना पर बल देते हुए पंडितो को फटकारते हैं और कहते हैं कि पंडित लोग हमेंशा सत्य बोलने का दावा करते हैं जबकि उन्हें शरीर और बुद्वि के विषय में कुछ पता नहीं होता। वे आवागमन को तो समाप्त नही कर पाते, फिर भी बिना किसी संकोच के अपने को पंडित कहते हैं। ब्राह्मण अपने को विद्वान मानते है पर उन्हे अंतः साधना का कुछ पता नहीं, वे जीवन के बाहरी आवरणों में ही उलझे रहते है।

अक्खर बाढा। सअल जगु, णाहि निरक्खर कोइ।

ताव से अक्खर घोलिया, जाव निरक्खर होइ।। (सरहपा)

अर्थ- सरहपा के अनुसार सारा संसार अक्षर अर्थात शास्त्रज्ञान से बाधित है, निरक्षर कोई नहीं है। इसलिए उतना ही अक्षर ज्ञान घोलो, अर्थात उतना ही शास्त्रज्ञान पर्याप्त है जिससे निरक्षरता यानी शास्त्रों के ज्ञान का खंडन किया जा सके।

आगम-वेअ-पुणेहि, पण्डिअ माण बहन्ति।

पक्क सिरीफले अलिअ जिम, बाहेरीअ भमन्ति।। (कण्हपा)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में सिद्ध कवि कण्हपा वेद पुराण के ज्ञान की आलोचना करते हुए लिखते है कि विद्वान समझे जाने वाले लोग आगम वेद पुराण को ही सर्वस्व मानकर ढोते रहते है। वस्तुतः वे मूलतत्त्व के पास भी फटकने नहीं पाते। कण्हपा का आशय यह है कि धर्म का मूलतत्त्व शब्दों से या शास्त्र ज्ञान से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

लोअह गस्ब समुब्बहइ , हउ परमत्थे पवीण।

कोटिह मज्झे एक्कु जइ, होइ णिरंजण लीण।। (कण्हपा)

अर्थ- सिद्ध कवि कण्हपा कहते हैं कि लोग व्यर्थ में ही गर्व करते है कि हम परमार्थ में प्रवीण हैं, जबकि करोड़ो लोगो के मध्य कोई एक ही निरंजन पुरूष ऐसा होता है जो वास्तव में परमार्थ में लीन होता है। कहने का आशय यह है कि साधारण लोग परमार्थ का झूठा गर्व करते है। क्योकि उनके परमार्थ में भी कोई न कोई स्वार्थ निहित रहता है, जबकि निरंजन पुरूष अर्थात जिसे आत्मज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है, वह वास्तविक करूणा से भरा होकर परमार्थ में ही जीवन लगा देता है।

10.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि आदिकालीन सिद्ध साहित्य में वर्णाश्रम व्यवस्था का खंडन वाह्याचारो तथा धर्मकांडो का विरोध,सहज जीवन और प्रवृति मार्ग का प्रतिपादन तथा महासुख आदि का वर्णन किया गया है। सिद्ध कवियो के दोहो और चर्यागीतो में प्रयुक्त भाषा में अंतर है। इस इकाई को पढने के बाद आप आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयवस्तु और भाषा के स्वरुप को परिचित हो सकेंगे।

10.7 शब्दावली

लवणों	-	नमक
तरुफल	-	वृक्ष पर लगे फल
कूव	-	कुँआ
नावड़ि	-	नाव
सुरसरि	-	गंगा
रअणी	-	रात

10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

आदिकालीन सिद्ध साहित्य की पाठगत विशेषतायें।

(1) (घ) ब्रह्मचर्य

आदिकालीन सिद्ध साहित्यय सैद्धान्तिक पाठ।

(1) (ग) सरहपा

10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची

(1) हिन्द काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1945

(2) हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान, डॉ.नामवर सिंह, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971।

10.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

(1) हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

(2) हिन्दी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

(3) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ. रामकुमार वर्मा,लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

(1) दोहा एवं चर्या गीतों में क्या अन्तर है? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।

(2) आदिकालीन सिद्ध साहित्य की विषयगत तथा भाषागत विशेषताओं का उदाहरण सहित परिचय दें?

इकाई11 आदिकालीन नाथ साहित्य: परिचय एवं स्वरूप

11.1 प्रस्तावना
11.2 उददेश्य
11.3 नाथ सम्प्रदाय
11.4 आदिकालीन नाथ साहित्य
11.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु
11.4.2 भाषा-शैली
11.5 प्रमुख नाथ कवि
11.6 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
11.7 सारांश
11.8 शब्दावली
11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची
11.11 उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.12 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता पाठ एवं आलोचना से संबंधित यह तीसरी इकाई है। इसके पहले की दो इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं एवं उनके साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को सिद्धों की परम्परा का ही संशोधित रूप माना जाता है। प्रस्तुत इकाई में नाथों की साधना पद्वति और मान्यताओं का परिचय देते हुए आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं और प्रमुख नाथ कवियों का परिचय दिया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन सिद्धों की मान्यताओं से नाथ सम्प्रदाय की भिन्नता, नाथ साहित्य की प्रवृत्तिगत एवं भाषागत विशेषताओं तथा परवर्ती हिंदी साहित्य पर पड़ने वाले इसके प्रभाव को जान सकेंगे।

11.2 उददेश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- बता सकेंगे कि नाथ सम्प्रदाय की क्या-क्या विशेषताएँ हैं।
- आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- परवर्ती भक्तिकालीन हिंदी साहित्य (निर्गुण या संत काव्य) पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव की पहचान कर सकेंगे।

11.3 नाथ सम्प्रदाय

इससे पहले की इकाइयों में आपने आदिकालीन सिद्ध साहित्य का परिचय प्राप्त किया है। नाथों का समय इन सिद्धों से थोड़ा बाद का है। चौरासी सिद्धों की सूची में कुछ नाथों के नाम भी मिलते हैं। इसीलिए नाथों का संबंध इन बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों से माना जाता है। हालाँकि सिद्ध कवि देश के पूर्वी हिस्से में रह रहे थे जबकि नाथों का निवास स्थान देश के पश्चिमोत्तर हिस्से में (राजपूताना और पंजाब) में बताया जाता है। नाथ पंथ या सम्प्रदाय को "सिद्धमत","सिद्धमार्ग", "योगमार्ग", "योग सम्प्रदाय' तथा "अवधूत मत" भी कहा गया है। डा. रामकुमार वर्मा के अनुसार – "सिद्धों की विचारधारा और उनके रूप को लेकर ही नाथ-वर्ग ने उनमें नवीन विचारों की प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में उनेक तत्त्वों का सम्मिश्रण किया।"

नाथों की संख्या नौ मानी जाती है। इन्हें "नवनाथ' के नाम से जाना जाता है। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं-आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ। नाथपंथी अपनी गुरू परंपरा शंकर (शिव) से आंरभ करते हैं। शंकर इस प्रकार आदिनाथ कहलाए। एक जनश्रुति के अनुसार शंकर ने सर्वप्रथम पार्वती को योग

का रहस्य बतलाया था। मत्स्येन्द्रनाथ या मच्छंदरनाथ ने नदी की मछली का रूप धारण कर यह संवाद सुन लिया। इस कारण शंकर ने उन्हें इन्द्रिय-सुख में बँध जाने का श्राप दे दिया। बाद में मत्स्येन्द्रनाथ के ही शिष्य गोरखनाथ ने अपने गुरू का उद्धार किया। वास्तव में इस जनश्रुति से हमें गोरखनाथ द्वारा अश्लील तांत्रिकता का विरोध कर उसके स्थान पर ब्रह्मचर्य या इन्द्रिय संयम पर आधारित योगमार्ग को प्रतिष्ठित करने का संकेत मिलता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आदिनाथ शिव से शरू हुई परम्परा को मत्स्येन्द्रनाथ ने आगे बढ़ाया और उनके शिष्य गोरखनाथ ने इसे एक सम्प्रदाय या पंथ के रूप में प्रतिष्ठित किया।

मत्स्येन्द्रनाथ और गोरखनाथ के नाम सिद्धों की सूची में भी मिलते हैं। लेकिन गोरखनाथ सिद्धों की वाममार्गी भोगप्रधान साधना-पद्वति के विरोधी थे। नाथ सम्प्रराय दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है और व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित है। गोरखनाथ ने इनके मेल से **हठयोग** रूपी साधना-पद्धति का प्रवर्तन किया। उन्होंने ब्रह्मचर्य, वाक्संयम, शारीरिक-मानसिक पवित्रता को अपनाने तथा मांस-मदिरा का त्याग करने की शिक्षा दी। उनका मानना था- **"जोई-जोई पिंडे सोई ब्रहमांडे"**, अर्थात जो शरीर में है वहीं ब्रहमांड है। इस प्रकार गोरखनाथ नाथ मत या सम्प्रदाय के प्राणदाता कहे जा सकते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार- "शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित व्यक्तित्व भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाये जाते हैं। भक्ति आंदोलन के पूर्व सबसे शाक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का भक्ति मार्ग ही था। गोरखनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।"

नाथ सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय की रूढ़ियों का खंडन करते हुए ही अपनी साधना पद्धति विकसित की। नाथों ने सदाचार का आश्रय लेकर काया (शरीर) में ही तीर्थ की अनुभूति की। गोरखनाथ ने पाखंडों का खंडन किया और मंत्रों को व्यर्थ बताया। योग द्वारा शरीर का कायाकल्प करना नाथों की साधना का आवश्यक अंग रहा है। क्योंकि जब तक शरीर चैतन्य और तेजयुक्त नहीं होगा, तब तक अविरत साधना नहीं हो सकती है। **नाथ** का अर्थ **मुक्तिदान करने वाला** माना गया है। जो स्वयं **मुक्त** होगा वही मुक्ति का दान कर पाएगा। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में संसार के बंधनों से मुक्त होने की विधि बताई गई है। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से तभी मुक्ति मिल सकती है, जब मन में वैराग्य की भावना स्थिर हो। यह वैराग्य- भाव गुरू की सहायता से ही उत्पन्न हो सकता है। इसके बाद योगी इन्द्रिय-निग्रह, प्राण- साधना और मन-साधना की ओर अग्रसर होता है। गोरखनाथ ने इन्द्रियों के लिए सबसे बड़ा आकर्षण **नारी** को बताया और अपने अनुयायियों के लिए नारी से दूर रहने का कड़ा नियम बनाया। इसके बाद प्राण- साधना का स्थान है, अर्थात प्राण-वायु के नियमित संचालन का अभ्यास। मन-साधना का अर्थ है संसार के विभिन्न आकर्षणों की ओर से मन को खींचकर अपने अन्तःकरण की ओर उन्मुख कर लेना। इन सब की सिद्धि के बाद योगी में नाड़ी- संचालन और कुंडलिनी- जागरण की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों और नाथों में अंतर था। सिद्ध निरीश्वरवादी थे, जबकि नाथ ईश्वरवादी थे। हालाँकि नाथों के ईश्वर सगुण न होकर निर्गुण निरंजन थे। नाथों ने जाति-पांति का भेद नहीं माना। गोरखनाथ स्वयं ब्राहमण थे, लेकिन उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था को नहीं माना। मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना होने पर हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। ऐसे जाति-परिवर्तित गरीब मुसलमानों में बहुत से लोगों ने नाथ पंथ को अपना लिया। इस तरह नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की नई और अनोखी जाति बन गई जिसके सदस्य न तो हिन्दू थे, न ही मुसलमान। इस युगीन प्रक्रिया ने धार्मिक सामाजिक भेदभाव को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाथों ने वर्णगत ऊँच- नीच, जातिगत भेदभाव और धर्मगत विभेद को अस्वीकार किया।

नाथ मत के व्यापक प्रचार-प्रसार होने का कारण यह भी था कि नाथों ने वज्रयानी सिद्धों के तंत्र में मौजूद वीभत्स आचारों को नहीं अपनाया। उन्होंने तंत्र जन्य वीभत्स चमत्कारों से विचलित जनता को ब्रहमचर्य और योगाभ्यास रूपी नए विकल्प दिए। इसके अलावा, नाथों के ईश्वर भले ही निर्गुण या निरंजन थे, लेकिन उनमें एक सर्वोच्च सत्ता के प्रति आस्था थी। इस कारण भी देश के पारंपरिक रूप से आस्थावान लोगों का झुकाव नाथ सम्प्रदाय की ओर हुआ। नाथ ईश्वर की स्थिति घट(शरीर) में मानते थे। वे भक्ति विरोधी थे। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने कहा- **"गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग।"** लेकिन कबीरदास ने गोरखनाथ के प्रति आदर व्यक्त किया है। इससे पता चलता है कि नाथों की मान्यताओं की विरासत आगे चलकर कबीर आदि निर्गुण संतो के पास गई। डा. रामकुमार वर्मा ने नाथ मत के प्रचार-प्रसार में गोरखनाथ की भूमिका के विषय में लिखा है- ‘‘गोरखनाथ ने नाथ-सम्प्रदाय को जिस आंदोलन का रूप दिया, वह भारतीय मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल सिद्ध हुआ। उसमें जहाँ एक ओर ईश्वरवाद की निश्चित धारणा उपस्थित की गई वहाँ दूसरी ओर धर्म को विकृत करने वाली समस्त परम्परागत रूढियों पर कठोर आघात भी किया गया। जीवन को अधिक से अधिक संयम और सदाचार के अनुशासन में रखकर आध्यात्मिक अनुभूतियों के लिए सहज मार्ग की व्यवस्था करने का शक्तिशाली प्रयोग गोरखनाथ ने किया।"नाथ पंथ या सम्प्रदाय के अनुयायी ‘कनफटे’ कहलाते है, क्योंकि ये अपने कानों के मध्य भाग को फाडकर उसमें बड़ा छेद कर लेते है। वे इसमें स्फटिक का कुंडल धारण करते है। नाथ सम्प्रदाय के अनुयायियों की दो शाखाएँ हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में रहने वाले अनुयायी गोरखनाथ को अपना गुरू मानते है और पश्चिमी भारत मे रहने वाले अनुयायी स्वयं को गोरखनाथ के ही शिष्य धर्मनाथ की परम्परा में मानते है।

यह पहले बताया जा चुका है कि नाथ सम्प्रदाय के उपदेशों का प्रभाव हिंदुओं के साथ-साथ मुसलमानों पर भी पड़ा था। नाथपंथ के इस प्रभाव की निरंतरता के बारे में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "अब भी इस प्रदेश में बहुत से मुसलमान जोगी गेरूआ वस्त्र पहने, गुदड़ी की लंबी झोली लटकाऐं, सारंगी बाजा बजाकर ‘कलि में अमर राजा भरथरी’ के गीत गाते फिरते हैं और पूछने पर गोरखनाथ को अपना आदि गुरू बताते हैं। ये राजा गोपीचंद के भी गीत गाते है जो बंगाल में

चटिगांव के राजा थे और जिनकी माता मैनावती कहीं गोरख की शिष्या और कहीं जलंधर की शिष्या कही गई हैं। ”

अभ्यास प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान भरिए

(क) नाथों की संख्या.....मानी जाती है।
(ख) नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने का श्रेय.....को है।
(ग) नाथ योगी .....कहलाते हैं।

2. सत्य/असत्य बताइए

(क) नाथ कवि मुख्यतः देश के पूर्वी भागों में रहते थे।

(ख) गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम पर अधिक जोर नहीं दिया।

(ग) नाथ ईश्वरवादी थे।

3. बहुविकल्पीय प्रश्न

i. सिद्धों की सूची में किसका नाम मिलता है-

(क) चौरंगीनाथ (ख) चर्पटनाथ
(ग) भर्तृनाथ (घ) गोरखनाथ

ii. ‘हठयोग‘ का प्रवर्त्तन किसने किया-

(क) आदिनाथ (ख) मत्स्येन्द्रनाथ
(ग) गाहिणीनाथ (घ) गोरखनाथ

iii. नाथ योगियों की साधना पद्धति का अंग नहीं है-

(क) इंद्रिय -संयम (ख) उपवास
(ग) प्राण-साधना (घ) मन-साधना

11.4 आदिकालीन नाथ साहित्य

इससे पूर्व के खंड में आपने नाथ सम्प्रदाय की विशेषताओं का परिचय प्राप्त किया। आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप से परिचित होने के लिए इसे जानना आवश्यक है। इस खंड में नाथ साहित्य के वर्ण्य विषयों या काव्यवस्तु, भाषा-शैली तथा प्रमुख नाथ कवियों से आपका परिचय कराया जाएगा।

11.4.1 वर्ण्य विषय/काव्यवस्तु

आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतों का परिचय मिलता है। यह स्वाभाविक है कि योग साधना में रत् नाथ योगियों के लिए शुद्ध साहित्य या साहित्य-संस्कार का कोई मतलब नहीं था। इसीलिए उनके साहित्य को इस दृष्टि से देखना उचित नहीं।

नाथों ने तीन बातों पर जोर दिया है- (1) योगमार्ग (2) गुरू महिमा (3) पिंड ब्रह्मांडवाद। बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की साधना लोकबाह्य और अमांगलिक है जबकि नाथ योगियों का हठयोग आंतरिक है। गुरू के बिना हठयोग की जटिल प्रक्रिया संभव नहीं, इसलिए नाथ साहित्य में गुरू की महिमा गायी गई है। नाथ साहित्य में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना, कुंडलिनी जागरण, शून्य समाधि आदि की चर्चा मिलती है। इसमें ईश्वरोपासना के बाहरी तौर-तरीकों के प्रति उपेक्षा प्रकट की गई है और घट के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने पर जोर दिया गया है। मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके शून्य-समाधि में ब्रह्म का साक्षात्कार करना नाथों का परम लक्ष्य था। गोरखनाथ के अनुसार योगी का चित्त विकार के साधन होने पर भी विकृत नहीं होता-

नौ लख पातरि आगे नाचैं, पीछे सहज अखाड़ा।
ऐसे मन लै जोगी खेलै, तब अंतरि बसै भंडारा।।

नाथ साहित्य मे साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी है जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। नाथों की कविता में किसी एक सम्प्रदाय या धर्म और जाति की जगह मानव-मात्र की बात की गई है। साथ ही, इसमें वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को व्यर्थ तथा तीर्थाटन आदि को निष्फल बताया गया है। नाथ साहित्य की इन विभिन्न प्रवृतियों का परिचय देने वाले पाठों का अध्ययन आप अगली इकाई में करेंगे।

11.4.2. भाषा-शैली

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, नाथ पंथ का अधिक प्रचार-प्रसार देश के पश्चिमोत्तर भाग अर्थात् राजपूताना और पंजाब की ओर अधिक हुआ। इसीलिए जब मत के प्रचार के लिए देशी भाषा में रचनाएँ की गई तो उस क्षेत्र में प्रचलित भाषा का ही व्यवहार किया गया। साथ ही, नाथ कवि अपनी बात कहने के क्रम में मुसलमानों को भी ध्यान में रखते थे जिनकी बोली दिल्ली के

आसपास प्रचलित खड़ी बोली थी। इसके कारण नाथ कवियों की बानी पर इस बोली का भी असर मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस संदर्भ में लिखा है- "इस प्रकार नाथपंथ के इन जोगियों ने परंपरा साहित्य की भाषा या काव्यभाषा से, जिसका ढ़ाँचा नागर अपभ्रंश या ब्रज का था, अलग एक "सधुक्कड़ी" भाषा का सहारा लिया जिसका ढाँचा कुछ खड़ी बोली लिए राजस्थानी था।" यहाँ 'सधुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा नहीं है, बल्कि मिश्रित भाषा है। आप जानते हैं कि साधु-संत प्रायः भ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए उनकी भाषा पर विभिन्न क्षेत्रों या प्रदेशों की भाषा की रंगत चढ़ जाती है। इसी कारण ऐसी भाषा को "सधुक्कड़ी" भाषा कहते हैं। आगे चलकर कबीर की भाषा का स्वरूप भी कुछ ऐसा ही मिलता हैं। इसके अलावा, नाथपंथी योगी तथा अनुयायी जहाँ-जहाँ गए वहाँ के लोगो के बीच नाथ गुरूओं के उपदेशों का प्रचार करने के क्रम में उन्होंने स्थानीय शब्दों और भाषिक प्रयोगों का भी सहारा लिया। डा0 पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने बताया है कि गोरखनाथ की रचनाएँ आज जिस रूप में मिलती हैं उनमें इसी कारण गुजराती, मराठी जैसी अन्य भाषाओं के भी प्रभाव मौजूद हैं।

नाथ कवियों ने प्रायः दोहा छन्द में अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है। उन्होंने राग-आधारित गेय पद भी रचे, जिन्हें "शब्द" या "सबदी" कहा जाता है। सैद्धांतिक निरूपण के लिए नाथों की कविता में पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया गया है। नाथ कवियों ने अपनी अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए अचरज और विसंगतियों से युक्त कथन-शैली अर्थात् उलटबाँसी का भी प्रयोग किया। जो कुछ लोक या जनसामान्य में विश्वसनीय ढ़ंग से कहा जाता है, उसे उलटकर कहना ही उलटबाँसी है। उलटबाँसियों में असामान्य प्रतीकों का प्रयोग होता है, जिनका अर्थ खुलने पर ही ये समझी जा सकती हैं।

11.5 प्रमुख नाथ कवि

गोरखनाथ ही नाथ साहित्य के प्रवर्त्तक माने गए हैं। नाथ सम्प्रदाय के अन्य कवियों का भी साहित्य मिलता है, लेकिन उनमें ज्यादातर गोरखनाथ की बातों का ही दुहराव मिलता है। गोरखनाथ के अलावा कुछ अन्य नाथ कवियों के नाम हैं- मत्स्येन्द्रनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, जलंधरनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेन्द्रनाथ, भर्तृनाथ, गोपीचंदनाथ आदि। यहाँ कुछ नाथ कवियों का परिचय दिया जा रहा है-

मत्स्येन्द्रनाथ - मत्स्येन्द्रनाथ को मीननाथ और मछंदरनाथ भी कहा गया है। इन्होंने योग की शिक्षा आदिनाथ (शिव) से प्राप्त की थी। कहा जाता है कि शिवजी योग-विद्या का रहस्य पार्वती को सुना रहे थे तो इन्होंने मछली का रूप धारण करके इसे सुन लिया। इसी कारण उनका यह नामकरण हुआ। ये गोरखनाथ के गुरू थे। यह भी कहा जाता है कि चोरी से योग-विद्या का रहस्य जान लेने के कारण शिवजी ने इन्हें मोहपाश में बंध जाने का शाप दिया था, जिससे इनके शिष्य गोरखनाथ ने ही उन्हें

मुक्त किया। गोरखनाथ ने श्रद्धा और आस्था से अपने गुरू की भक्ति की थी, इसलिए गुरू ने उन्हें योग के प्रथम अधिकारी और आचार्य माने जाने का आशीर्वाद दिया था। इनकी कविता का उदाहरण है-

यों स्वारथ को जीवड़ो, स्वारथ छाड़ि न जाय।
जब गोरख किरपा करी, म्हारो मनवो समझायो आय।।

× × ×

जोगी सोई जोगी रे, जुगत रहै उदास।
तात नीरं जण पाइया, यो कहे मत्स्येन्द्रनाथ।।

गोरखनाथ - गोरखनाथ की जन्मतिथि और जन्मस्थान के विषय में विद्धानों की अलग-अलग राय है। राहुल सांकृत्यायन ने इनका समय 845 ई. माना है और हजारी प्रसाद द्विवेदी भी इन्हें नवीं सदी का ही मानते हैं। डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने गोरखनाथ को ग्यारहवीं सदी के मध्य का माना है। डॉ.रामकुमार वर्मा का भी मानना है कि गोरखनाथ तेरहवीं सदी के मध्य में हुए। इसी प्रकार कुछ विद्वान गोरख को दक्षिण देश का निवासी बताते हैं, कुछ नेपाल का और कुछ पंजाब का। समान्यतः उन्हें कांगड़ा-निवासी माना जाता है, जहाँ पर उनके प्रभाव अब भी मौजूद हैं।

डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल के अनुसार गोरखनाथ का उत्तराखंड से भी संबध रहा है। उन्होंने दक्षिण गढ़वाल के 'घौल्या उढ्यारी' (धवल गुहा) नामक गुफा में तपस्या कर सिद्वि प्राप्त की थी। इसलिए गढ़वाल के मंत्र-साहित्य पर भी गुरू गोरखनाथ का काफी प्रभाव रहा है। प्राचीन जनश्रुतियों में गोरखनाथ को सर्वशक्तिशाली मानते हुए उनमें देवत्व की स्थापना की गई है। उन्हें गोरखा राज्य का संरक्षक भी माना जाता है।

गोरखनाथ ने सिद्धों की पूर्वप्रचलित भोगप्रधान साधना-पद्वति का विरोध कर संयम पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति को प्रतिष्ठित किया था। उस युग के साधु-संतों में भ्रमण या देशाटन की प्रवृत्ति रही थी। गोरखनाथ ने भी पंजाब, गुजरात, काठियावाड़, उत्तरप्रदेश, नेपाल, असम, उड़ीसा आदि की यात्रा करके अपने मत का प्रचार-प्रसार किया। उन्होंने यात्राएँ ही नहीं की, बल्कि विभिन्न मतों के विद्वानों-आचार्यों से शास्त्रार्थ भी किया। उस युग में उत्तर भारत की स्थिति विषम थी। यह पूरा क्षेत्र राजनीतिक रूप से तो कई टुकड़ों में बँटा ही था, धार्मिक दृष्टि से भी अनेक मत-सम्प्रदायों में विभक्त था। इन मतभेदों के परिदृश्य में गोरखनाथ ने अपने सम्प्रदाय के माध्यम से धार्मिक एकसूत्रता लाने का प्रयास किया। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वे एक लोकप्रिय धार्मिक नेता हो सके। गोरखनाथ नाथ साहित्य के सर्वप्रमुख रचनाकार हैं। उन्होंने संस्कृत और देशभाषा (हिंदी) दोनों में रचनाएँ कीं। मिश्र बंधुओं के अनुसार गोरखनाथ के नौ संस्कृत ग्रंथ है, जबकि हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अट्ठाईस पुस्तकों का उल्लेख किया है। उनकी कई संस्कृत रचनाएँ आज उपलब्ध है,

लेकिन उनमें से कुछ की प्रामाणिकता संदिग्ध है। गोरख की कुछ संस्कृत रचनाओं के नाम है- 'सिद्ध सिद्वांत पद्वति', 'गोरक्ष संहिता' 'अमरौध-शासनम', 'विवेकमार्तण्ड', 'निंरजन पुराण', 'वैराट पुराण', 'योगचिंतामणि', 'चतुरशीत्यासन',। इनकी देश भाषा की रचनाएँ भी मिलती है। डॉ0 पीतांबर दत्त बडथ्वाल ने गोरखनाथ की इन रचनाओं का संकलन और संपादन करके 'गोरखबानी' शीर्षक से प्रकाशित करवाया है। उन्होने निम्नलिखित रचनाओं को प्रामाणिक माना है- 'सबदी', 'पद', 'सिष्या दरसन', 'प्राण संकली', 'नरवै बोध', 'अभैमात्रा जोग', 'आतम बोध', 'पन्द्रह तिथि' 'सप्तवार', 'मछीन्द्र गोरखबोध', 'रोमावली', 'ग्यानतिलक', 'ग्यान चौंतीसा' एवं 'पंचमात्रा'।

विद्वानों ने गोरख द्वारा रचित बताई जाने वाली कुछ अन्य पुस्तकों को उनके शिष्यों द्वारा रचित बताया है, जैसे कि 'गोरखनाथजी के पद' और 'दत्तगोरख संवाद'। इसके अलावा कुछ रचनाएँ उनकी ही संस्कृत रचनाओं का अनुवाद हैं। उदाहरण के लिए, 'विराट पुराण' को स्वयं गोरख की ही संस्कृत रचना 'वैराट पुराण' का अनुवाद माना जाता है। गोरखनाथ के विषय में महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने संस्कृत में सिद्वांत-ग्रंथो की रचना करने के साथ-साथ अपने मत के व्यापक प्रचार के लिए जनसमुदाय की भाषा को अपनाया।

इनकी कविता का उदाहरण है-

यंद्री का लड़बड़ा, जिम्भा का फूहड़ा।
गोरस कहै ते परतसि चूहड़ा।।
काछ का जती मुख का सती।
सो सत पुरूष उतमो कथी।।

बालानाथ:- पंजाब में इनके नाम पर 'बालानाथ का टीला' प्रसिद्ध रहा था। जायसी ने भी उसका उल्लेख किया है। इससे यह पता चलता है कि बालानाथ अपने समय के महत्वपूर्ण योगी रहे होंगे। इनकी कविता का उदाहरण है-

पहलै पहरै सब कोई जागै, दूजै पहरै भोगी।
तीजै पहरै तसकरि जागै, चौथे पहरै जोगी।।

चर्पटनाथ:- ये कहीं गोरखनाथ के और कहीं बालानाथ के शिष्य बताए गए हैं। ये राजपूताना के रहने वाले थे। इन्हें संस्कृत ग्रंथ 'चर्पटमंजरी' का लेखक भी बताया जाता है। इनकी कविता का उदाहरण है-

किसका बेटा किसकी बहू,
आप सवारंथ मिलिया सहू।।
जेता पूला तेती आल,

चरपट कहै सब आल जंजाल।।

चौरंगीनाथ:- चौरंगीनाथ 'पूरन भगत' के नाम से भी प्रसिद्ध रहे थे। ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इनके विषय में यह किंवदन्ति है कि अपनी विमाता के प्रणय की अवहेलना करने के कारण इनकी आँखें फोड़ दी गईं और हाथ-पैर काटकर कुएँ में डाल दिया गया। बाद में गोरखनाथ ने उन्हें सुंदर शरीर से सम्पन्न (चौरंगी) बनाकर किसी कुँवारी की बटी हुई रस्सी के सहारे कुएँ से बाहर निकाला।

इनकी कविता का उदाहरण है-

मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिबा पवन भंडारं।
साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

इन कवियों के अलावा भी कई नाथ कवियों के नाम से रचनाएँ मिलती हैं। भर्तृनाथ और गोपीचंदनाथ राजा होते हुए भी योगी बन गए थे। भर्तृनाथ ही भर्तृहरि या भरथरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। भरथरी और गोपीचंद के नाम से आज भी कई लोकगीत प्रचलित हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

(1) रिक्त स्थान भरिए

(क) उलटबाँसी में .....का प्रयोग होता है।
(ख) गोरखनाथ के गुरू ..... थे।
(ग) नाथ कवियों की भाषा को ..... भाषा कहा जाता है।

(2) सत्य/असत्य बताइए

(क) गोरखनाथ को नाथ साहित्य का प्रवर्त्तक माना जाता है।
(ख) नाथ कवियों ने वेद-शास्त्र आदि के अध्ययन को आवश्यक बताया है।
(ग) 'सघुक्कड़ी' भाषा का अर्थ बिगड़ी हुई भाषा है।
(घ) डा. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने 'गोरखबानी' नामक ग्रंथ में गोरखनाथ की रचनाओं का संकलन किया है।

(3) बहुविकल्पीय प्रश्न

i. नाथ साहित्य में किसकी चर्चा नहीं मिलती है -
   (क) नारी साहचर्य (ख) गुरू महिमा
   (ग) बाह्याचारों का विरोध (घ) वैराग्य

ii. नाथ साहित्य में क्या नहीं मिलता है-

(क) साखी (ख) उलटबाँसी

(ग) सबदी (घ) सोहर

iii. गोरखनाथ की रचना नहीं है-

(क) सिद्ध-सिद्धांत पद्धति (ख) बीजक

(ग) सबदी (घ) वैराट पुराण

11.5 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव

आदिकालीन नाथ साहित्य का प्रभाव बाद के भक्तिकालीन संत साहित्य पर देखा जा सकता है। नाथ साहित्य ने परवर्ती ज्ञानमार्गी संतकाव्य को विषयतत्त्व के साथ-साथ काव्यशिल्प या काव्यपद्धति की दृष्टि से भी प्रभावित किया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार-''यदि कबीर आदि निर्गुणमतवादी संतो की वाणियों की बाहरी रूपरेखा पर विचार किया जाए तो मालूम होगा कि यह संपूर्णतः भारतीय है और बौद्व धर्म के अंतिम सिद्वों और नाथपंथी योगियों के पदादि से उसका सीधा संबध है। वे ही पद, वे ही राग-रागिनियाँ, वे ही दोहे, वे ही चौपाइयाँ कबीर आदि ने व्यवहार की हैं, जो उक्त मत के मानने वाले उनके पूर्ववर्ती संतों ने की थीं। क्या भाव, क्या भाषा, क्या अलंकार, क्या छंद, क्या पारिभाषिक शब्द, सर्वत्र वे ही कबीरदास के मार्गदर्शक हैं।"

नाथ सम्प्रदाय के हठयोग पर निश्चय ही कबीर की आस्था दिखती है। उनके काव्य में नाथपंथियों की अंतस्साधनात्मक रहस्य भावना, हठयोग, नाद, बिंदु, कुंडलिनी, षटचक्रभेदन आदि का वर्णन मिलता है। उन्होंने इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना आदि के जरिए 'अनहद' नाद सुनने की रीति बताई है। इसके अलावा उन्होंने उलटबाँसियों का भी प्रयोग किया है। इस संदर्भ में डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने लिखा है-''हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने भक्ति-धारा की दो शाखाओं के दर्शन कराए हैं- एक निर्गुण शाखा और दूसरी सगुण शाखा। निर्गुण शाखा वास्तव में योग का ही परिवर्तित रूप है। भक्ति-धारा का जल पहले योग के घाट पर बहा था।" नाथ सम्प्रदाय में माया की अवहेलना की गई है जो आगे चलकर संतों के यहाँ भी चेतावनी के रूप में आती है। कबीर की कविता में यत्र-तत्र नारी की निंदा मिलती है। इसे भी नाथों के इन्द्रिय-निग्रह और निवृत्तिमूलक दर्शन के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार, भक्तिकालीन संतकाव्य में धार्मिक रूढियों और बाह्य आडम्बरों का विरोध करते हुए अंतस्साधना पर जो बल दिया गया है उसे आदिकालीन सिद्ध नाथ कवियों के प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रभाव को काव्य पद्धति की दृष्टि से भी लक्ष्य किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, दोहा छंद में यदि सिद्धों की रहस्यवादी भावनाएं व्यक्त हुई थीं तो गोरखनाथ जैसे अलख जगाने वाले

नाथ योगियों की बानियाँ भी कहीं गईं। वास्तव में, नाथपंथियों और कबीर पंथियों के 'धर्म निरूपणपरक' दोहे ही 'साखी' कहे जाते हैं। 'साखी' नाथपंथ मे साहित्य में मिलती है और भक्तिकालीन संतो के साहित्य में भी। 'साखी' का अर्थ है- साक्षी देना, अर्थात् पूर्ववर्ती साधकों या गुरूओं द्वारा बताए गए सत्य का स्वयं अनुभव कर उसकी गवाही देना। धीरे-धीरे गुरू के वचनों को 'साखी' कहा जाने लगा होगा। गुरू के ऐसे वचन या उपदेश जनप्रचलित दोहा छंद में बद्ध थे। इसलिए कुछ दिनों बाद 'दोहा' और 'साखी' समानार्थक शब्द मान लिए गए होंगे। कबीर-साहित्य में तो दोहे का अर्थ ही साखी हो जाता है। इसके अलावा अन्य निर्गुण संतो के सम्प्रदाय में भी इस काव्यरूप का प्रचलन मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने इतिहास में लिखा है- ''कबीर आदि संतों को नाथपंथियों से जिस प्रकार 'साखी' और 'बानी' शब्द मिले, उसी प्रकार 'साखी' और 'बानी' के लिए बहुत कुछ सामग्री और 'सधुक्कड़ी' भाषा भी"। सिद्धों और नाथों में 'शब्द' काव्यरूप भी प्रचलित था। 'शब्द' गेय पदों को कहा जाता है जो किसी-न-किसी राग में निर्दिष्ट होते हैं। भक्तिकालीन संतों ने भी इस पूर्व प्रचलित काव्यरूप को अपनाया। 'गोरखबानी' में उद्धृत ऐसे पदों को 'सबदी' कहा गया है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है-''जान पड़ता है, बीजक का 'शब्द' नाथपंथी योगियों का है और कबीरपंथ में वह सीधे वहीं से आया है।" भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों के कई शब्द, पद, दोहे और उलटबाँसियों को ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया था। हालाँकि उनमें कहीं-कहीं थोडा बहुत परिवर्तन भी दिखता है। उदाहरण के तौर पर नाथ योगियों के पद और भक्तिकालीन संत दादू के पद में समानता देखी जा सकती है-

नाथयोगियों का पद-

उठ्या सारन् बैठ्या सारन् सारन् जागत सूता ।
तिन भुवनें बिछाइना जाल कोइ जाबि रे पूता।।

दादू का पद-

उठ्या सारं बैठ विचारं संभारं जागता सूता।
तीन लोक तत जाल विडारन कहाँ जाइगा पूता।।

इसी प्रकार गोरखनाथ की एक उलटबाँसी है- **नाथ बोलै अमृत बाणी। बरिसैगी कंबली भीजैगा पाणी।** यह रोचक है कि कबीरदास के नाम पर यही उलटबाँसी इस प्रकार मिलती है- **कबीरदास की उलटी बानी। बरसै कंबल भीजै पानी।** इस प्रकार के कई अन्य उदाहरण भी हैं। हालाँकि यह सही है कि कबीर आदि भक्तिकालीन संतों ने नाथ कवियों से प्रेरणा और प्रभाव ग्रहण किए हैं, लेकिन उनकी साधना का स्वरूप थोड़ा भिन्न था। इसलिए भक्तिकालीन संतकाव्य में उपस्थित भक्ति का रस सिद्धों-नाथों की कविता में नहीं मिलता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की मान्यताओं और साधना पद्धति में संशोधन करके नाथपंथी योगियों ने भक्तिकालीन संतों के लिए विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। नाथ सम्प्रदाय को वास्तव में सिद्धों और संतों के बीच की कड़ी माना जाता है। डॉ0 रामकुमार वर्मा की राय में -''संत साहित्य का आदि इन्हीं सिद्धों को, मध्य नाथपंथियों को और पूर्ण विकास कबीर से प्रारंभ होने वाली संत-परम्परा में नानक, दादू, मलूकदास, सुन्दरदास आदि को मानना चाहिए।"

अभ्यास प्रश्न 3

(1) भक्तिकालीन संतकाव्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव के विषय में क्या असत्य है-

(क) माया की अवहेलना
(ख) अंतस्साधनात्मक रहस्यवाद
(ग) उलटबाँसियो का प्रयोग
(घ) भक्ति का तत्त्व

11.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि बौद्ध या वज्रयानी सिद्धों की भोगप्रधान तांत्रिक साधना पद्धति तथा मान्यताओं में संशोधन करके गोरखनाथ ने इंद्रिय-संयम तथा सदाचार पर आधारित 'हठयोग' रूपी साधना पद्धति का प्रसार-प्रचार किया। आदिकालीन नाथ साहित्य में नाथ सम्प्रदाय की इस साधना पद्धति के निरूपण के साथ-साथ बाह्याचार तथा रूढियों का खंडन भी किया गया है। नाथ साहित्य ने परवर्ती भक्तिकालीन संत साहित्य को विषयवस्तु तथा शैली, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है। इस इकाई के अध्ययन से आप आदिकालीन नाथ साहित्य के स्वरूप और महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।

11.8 शब्दावली

हठयोग- 'सिद्ध-सिद्धांत पद्धति' ग्रंथ के अनुसार 'ह' का अर्थ है सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ है चंद्र। सूर्य और चंद्र क्रमशः दक्षिण और वाम स्वर के प्रतीक हैं। हठयोग में देह स्थित 'ह' अर्थात् ज्ञान, प्रकाश और शक्ति के वाचक सूर्य तथा 'ठ' अर्थात् आनंद, रस तथा शीतलता के वाचक चंद्र की संयुक्त साधना की जाती है। इस साधना का स्वरूप आंतरिक होता है।

अंतस्साधना- हृदय और मन द्वारा ईश्वर को प्राप्त करने की आंतरिक साधना पद्धति।

इड़ा-पिंगला-सुषुम्ना- मेरूदंड में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें योग की दृष्टि से इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना महत्त्वपूर्ण हैं। इड़ा नाड़ी बाई ओर तथा पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर स्थित होती है। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है। इसी नाड़ी के माध्यम से कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इसलिए योग साधना में सुषुम्ना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नाड़ी मानी जाती है।इड़ा के लिए चंद्र, गंगा आदि प्रतीकों का; पिंगला के लिए सूर्य, यमुना आदि प्रतीकों का तथा सुषुम्ना के लिए अवधूती, सरस्वती, बंकनालि आदि प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता है।

षट्चक्र-भेदन- कुंडलिनी द्वारा मेरूदंड के मूल से लेकर त्रिकुटी (भौंहों के मध्य) तक क्रमशः स्थित छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्व और आज्ञा नामक चक्र - का भेदन करना। इसके बाद कुंडलिनी शून्य चक्र स्थित ब्रह्मरंध्र मे पहुँच जाती है।

अनाहत नाद- अरिवल ब्रह्मांड में अखंड भाव से व्याप्त नाद।

नाद- योगी की देह में स्थित कुंडलिनी जब सक्रिय होकर ऊर्ध्वगमन करती हुई शीर्षस्थ चक्र में पहुँचती है तो उससे स्फोट होता है, जिसे नाद कहते हैं।

बिंदु - नाद से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे बिंदु कहते हैं।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

(1) 1. (क) नौ (ख) गोरखनाथ (ग) कनफटा

2. (क) असत्य (ख) असत्य (ग) सत्य

3. i. गोरखनाथ

ii. मच्छेन्द्रनाथ

iii. उपवास

(2) 1. (क) असामान्य प्रतीकों (ख) मत्स्येन्द्रनाथ (ग) सघुक्कड़ी

2. (क) सत्य (ख) असत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. i. नारी साहचर्य

ii. सोहर

iii. बीजक

(3) 1. भक्ति का तत्त्व

11.10 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, रामकुमार, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, , लोक भारती प्रकाशन।
2. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 2002
3. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी।
4. चातक, गोविन्द (सं.), डॉ. पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, तक्षशिला प्रकाशन।
5. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली 2006
6. द्विवेदी, हजारी प्रसाद, हिन्दी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली 2010

11.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बडथ्वाल, पीताम्बरदत्त हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली 1995

2. सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दी काव्य-धारा, किताब महल, इलाहाबाद 1945

11.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नाथ सम्प्रदाय को प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका पर प्रकाश डालें।
2. आदिकालीन नाथ साहित्य की विशेषताओं का परिचय दें।
3. परवर्ती हिन्दी साहित्य पर आदिकालीन नाथ साहित्य के प्रभाव को स्पष्ट करें।

इकाई 12: आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठ एवं परिचय

इकाई का स्वरूप

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठगत विशेषताएँ
12.4 आदिकालीन नाथ साहित्य: सैद्धान्तिक पाठ
12.5 आदिकालीन नाथ साहित्य: गैर-सैद्धान्तिक पाठ
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
12.11 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से संबंधित यह चौथी इकाई है। इसके पहले की इकाई में आपने नाथ पंथ या सम्प्रदाय के उद्भव, उसे प्रतिष्ठित करने में गोरखनाथ की भूमिका, नाथ मत की हठयोग साधना तथा अन्य मान्यताओं के विषय में जाना। इसके अलावा आप आदिकालीन नाथ साहित्य और प्रमुख नाथ कवियों से भी परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन नाथ साहित्य की पाठगत विशेषताओं से आपका परिचय कराया जा रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप नाथ साहित्य में व्यक्त विचारों को जान सकेंगे तथा परवर्ती हिन्दी साहित्य के संतकाव्य की प्रवृत्तियों से इसके संबंध की पहचान कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- आदिकालीन नाथ कवियों की कविता में व्यक्त सैद्धान्तिक मान्यताओं, रूढ़ि-विरोधी स्वर तथा नीतिपरक विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा एवं शिल्प संबंधी विशेषताओं को जान सकेंगे।

12.3 आदिकालीन नाथ साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

आप यह पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन नाथ साहित्य में मुख्यतः इस पंथ या सम्प्रदाय के सैद्धांतिक मतों का परिचय मिलता है। लेकिन इसके साथ ही नाथ कवियों ने उन सभी रूढ़ियों का खंडन भी किया है जो सिद्धों के यहाँ पाया जाता है। उन्होंने दैनिक जीवन से संबंधित विषयों पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं। इस प्रकार नाथ कवियों की रचनाओं को सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक कोटियों में विभाजित कर उनका अध्ययन किया जा सकता है।

सैद्धांतिक कोटि की रचनाओं में गुरू महिमा, इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, वैराग्य, मन-साधना,कुंडलिनी-जागरण, षट्चक्रभेदन, अनाहत नाद आदि विषयों से संबंधित रचनाएँ आती हैं। नाथ कवियों ने अपनी रचनाओं में ईश्वरोपासना के बाहरी तौर-तरीकों की जगह मन और आचरण की शुद्धता अर्जित करके घट (शरीर) के भीतर ही ईश्वर को प्राप्त करने की विधि बताई है। अब भी

गोरखनाथ, भरथरी (भर्तृहरि) और गोपीचंद के नाम से जनता में अनेक लोक-गीत प्रचलित हैं। इनमें बड़े भावनामय ढंग से संसार की नश्वरता और भौतिक सुख-साधनों की निस्सारता बताई जाती है। लोक भाषा में रचित इन गीतों में योग के सिद्धांत अत्यंत व्यावहारिक ढंग से बताए गए हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा का मानना है कि- "भर्तृहरि और गोपीचंद के गीतों ने शताब्दियों तक जिस धार्मिक जीवन में आस्था रखने का संदेश दिया है, वह बड़े-बड़े तत्त्ववादियों द्वारा नहीं दिया जा सका।" वास्तव में इन लोक-गीतों ने नाथ मत के प्रभाव को जनता के हृदय तक पहुंचा दिया।

गैर-सैद्धांतिक कोटि की रचनाओं में रूढ़ि-विरोध, पाखंड-खंडन, आचार-संयम आदि से संबंधित रचनाएँ आती हैं। नाथ कवि जहाँ एक ओर सैद्धांतिक प्रतिपादन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर वे तत्कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों पर भी अपने विचार प्रकट कर रहे थे। नाथों ने अपनी कविता में मानव-मात्र की बात की है और सामान्य जन के दैनिक जीवन से संबंधित विषयों पर भी नीतिपूर्ण शिक्षा दी है। नाथ कवियों ने हिंसामूलक तथा दुर्नीतिमूलक आचरणों के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया है।नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा से हिंदी के आरंभिक स्वरूप का परिचय मिलता है। ध्यान रहे कि आदिकालीन हिन्दी कविता की भाषा का कोई एकल स्वरूप नहीं था। आप अलग-अलग क्षेत्रों के कवियों की भाषा में बोलीगत भिन्नता और स्थानीय प्रभावों को स्पष्ट रूप से लक्ष्य कर सकते हैं। नाथ कवियों की रचनाओं की भाषा सधुक्कड़ी अर्थात मिश्रित प्रकृति की भाषा है। इनकी कविता में घणो, धीय, पाणी, जिनि, काहे, पढ़िबा, मांहि, कीजै, अजहुँ आदि भाषिक प्रयोगों से विभिन्न क्षेत्रीय प्रभावों की पुष्टि होती है। नाथ कवियों की भाषा में स्थानीय प्रभाव तो है ही, इसके अलावा सम्प्रदायगत पारिभाषिक शब्दावली तथा असामान्य प्रतीकों से युक्त उलटबाँसियों का प्रयोग भी इनकी भाषा की विशेषता है। नाथों की वैचारिक और भाषिक विशेषता की यह विरासत हम आगे चलकर भक्तिकालीन संतकाव्य में भी पाते हैं।

इस इकाई के अगले दो खंडों में आपका परिचय नाथ कवियों के सैद्धांतिक और गैर-सैद्धांतिक पाठ से कराया जा रहा है।

1. अभ्यास प्रश्न

(1) सत्य/ असत्य बताएँ

(क) नाथ कवियों ने सिद्धों की रूढ़ियों को अपनाया।

(ख) नाथ साहित्य में हठयोग के सिद्धांतों पर चर्चा मिलती है।

(ग) नाथ कवियों की भाषा में विभिन्न क्षेत्रों की भाषा का प्रभाव दिखता है।

(घ) आदिकालीन नाथ साहित्य का परवर्ती हिन्दी साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

12.12 आदिकालीन नाथ साहित्यः सैद्धांतिक पाठ

(क) गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुर बिन ग्यांन न पायला रे भाईला।।

दूधै धोया कोइला उजला न होइला, कागा कंठै पहुप माल हंसला न भैला।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में गुरू की महिमा बताई गई है। साधना के मार्ग में सफलता प्राप्त करने के लिए गुरू का होना आवश्यक है। गोरखनाथ कहते हैं कि साधक को गुरू की तलाश करनी चाहिए, क्योंकि गुरू के बिना ज्ञान नहीं मिल सकता। वे उदाहरण देते हैं कि दूध से धोकर भी कोयला उजला नहीं हो सकता और कंठ में फूलों की माला धारण करके भी कौवा कभी हंस नहीं हो सकता है। उनके आंतरिक गुण ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। इसलिए गोरखनाथ साधक को अपने अज्ञान और अनाड़ीपन को दूर करने के लिए गुरू की तलाश करने को कहते हैं।

(ख) आसति छैहो पिडता नासति नांहि। अनभै होय परतीति निरंतरि मांही।।

ग्यांन षोजि अभे विग्यांन पाया। सति सति भाषंत सिध सति नाथ राया।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में वैराग्य का महत्व बताया गया है। गोरखनाथ सांसरिक विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग करने को कहते हैं। संसार के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि विषयों से मुक्त होकर ही 'अनभै', अर्थात् भयमुक्त हुआ जा सकता है। किसी वस्तु या विषय के प्रति आसक्ति के भाव में उसे खो देने का भय भी बना रहता है। इसीलिए आसक्ति को त्याग देने वाला मनुष्य स्वयं को निरंतर भयमुक्त अनुभव करता है। गोरखनाथ अपना अनुभव बताते हैं कि उन्होंने आसक्ति से मुक्ति का ज्ञान खोजकर अभय-रूपी विज्ञान, अर्थात् विशेष ज्ञान प्राप्त कर लिया है।

(ग) भोगिया सूते अजहूं न जागे। भोग नहीं रे रोग अभागे।।

भोगिया कहै भल भोग हमारा। मनसइ नारि किया तन छारा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में योगी के लिए ब्रह्मचर्य या इंद्रिय-निग्रह की आवश्यकता बताई गई है। गोरखनाथ भोग-विलास में डूबे पुरूष को सोया हुआ बताते हैं। भोग-वृत्ति के कुपरिमाणों की ओर से उदासीन पुरूष सोए हुए के समान है। भोगी पुरूष अपने आचरण को उचित मानता है, जबकि

गोरखनाथ के अनुसार यह रोग है। नारी पर ध्यान लगाने वाला पुरूष अपने शरीर को नष्ट कर देता है। साधना के मार्ग में नारी बाधा के समान है। प्रवृत्ति में लीन होकर निवृत्ति की ओर बढ़ना वैसे ही कठिन है, जैसे शर्बत पीते हुए उसका स्वाद न लेना। इसीलिए नाथ सम्प्रदाय में ब्रह्मचर्य और इंद्रिय-निग्रह पर जोर दिया गया है तथा नाथ योगियों के लिए नारी का निषेध किया गया है।

(घ) आसण बैसिवा पवन निरोधिवा, थांन मांन सब धन्धा।

बदंत गोरखनाथ आतमां विचारंत, ज्यूं लज दीसै चंदा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने इन पंक्तियों में प्राण-साधना की विधि बताई है। प्राण-साधना से तात्पर्य शरीर के अंतर्गत प्राण-वायु के नियमित संचालन और कुम्भक आदि से है। श्वास-प्रश्वास संबंधी इस व्यायाम को प्राणायाम कहते हैं। पंतजलि के अनुसार आसनस्थ होकर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है। गोरखनाथ ने पतंजलि के योग को लेकर ही अपने हठयोग का स्वरूप तैयार किया था।

गोरख की उपर्युक्त पंक्तियों में प्राणायाम की प्रक्रिया समझाई गई है। प्राणायाम की पहली अवस्था अर्थात् 'रेचक' में श्वास को बाहर निकालकर गति का अभाव किया जाता हैं। पुनः 'पूरक' की अवस्था में श्वास को अंदंर खींचकर गति का अभाव किया जाता है। अंततः, 'कुम्भक' या स्तंभवृति की अवस्था में दोनों का, अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गतियों का एक साथ अभाव होता है। गोरखनाथ योगियों से कहते हैं कि आसन लगाकर बैठो, वायु को रोक लो और बाह्य-आंतरिक सभी प्रकार की गतिविधियों से स्वयं को परे कर लो। ऐसा कर लेने के बाद ही शीर्षस्थ चक्र में स्थित अमृत की वर्षा करने वाले चंद्रमा तक पहुँच हो सकेगी।

(ङ) नाथ बोलै अमृत बांणी। बरिषैगी कंबली पांणी।।

गाड़ि पडरवा बाँधिलै षूंटा। चलै दमामा बजिले ऊंटा।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की ये पंक्तियाँ मन-साधना से संबंधित हैं। मन-साधना से प्रत्याहार, अर्थात् इंद्रियों का कार्य-व्यापार रूक जाना, सिद्व होता है। इसके बाद इंद्रियाँ योगी के वश में हो जाती हैं। गोरख यह अमृत के समान सिद्धिदायक उपाय बताते हैं कि इधर-उधर भटकने वाले पशु जैसे चित्त या मन को साधना रूपी खूँटे से बाँधकर स्थिर करने और श्वास-प्रश्वास को साध लेने के बाद अनाहत नाद उत्पन्न होगा। इससे ब्रह्मरंध्र स्थित सहस्त्रदल कमल से अमृत की वर्षा होगी और साधक उसमें भींग-भींगकर आनंदित होगा।

योगी अपने शरीर के अंतर्गत प्राण-वायु के संचालन में सिद्धहस्त होने के बाद मन-साधना की ओर प्रवृत्त होता है। विभिन्न प्रकार की सांसारिक, मायाजन्य प्रवृत्तियों की ओर से मन को खींचकर अन्तःकरण की ओर उन्मुख करना ही मन-साधना है। मन की स्वाभाविक गति बाहरी संसार की ओर होती है। इस स्वाभाविक गति को उलटकर अन्तर्मुख करना इस साधना की कसौटी होती है। उलटने की इस प्रक्रिया में सांसारिक कार्य-व्यापारों में विरोधाभास दिखता है। यह विरोधाभास ही नाथ योगियों की उलटबाँसियों का आधार है। गोरखनाथ की उपर्युक्त पंक्तियाँ उलटबाँसी का ही उदाहरण है। उलटबाँसी असामान्य या परस्पर विरोधाभासी दिखने वाले प्रतीकों से युक्त कथन-शैली है, जिसके द्वारा नाथ कवि सामान्य श्रोता को हतप्रभ कर देते हैं। इनमें प्रयुक्त प्रतीकों का अर्थ खुलने पर ही इनका तात्पर्य स्पष्ट होता है।

(च) सास उसास बाइ कौ भषिबा। रोकि लेहु नव द्वारं।।

छइै छमासि काया पलटिबा। तब उनमनी जोग अपारं।। (गोरखनाथ)

अर्थ- योगी रसायन या रस-विद्या की सहायता से शरीर की आंतरिक दुर्बलताओं और विकारों को दूर करता है। गोरखनाथ उपर्युक्त पंक्तियों में इसकी प्रक्रिया बताते हैं। उनके अनुसार इसके लिए शरीर के अंदर जाने वाली साँस और बाहर निकलने वाले उच्छवास रूपी प्राण-वायु को साधना पड़ता है। फिर शरीर के नौ द्वारों को बंद कर आंतरिक ऊर्जा का संरक्षण करने से कुछ ही दिनों में कायापलट हो जाता है और उनमनी की दशा प्राप्त होती है। जब प्राणायाम द्वारा वायु ब्रह्मरंध्र में प्रवेश करता है तो जिस आनंदपूर्ण अवस्था को मन प्राप्त होता है उसे ही 'लय', 'मनोन्मनी' या उन्मनी कहते है। यह उस अवस्था का सूचक है जब संकल्प-विकल्पात्मक चंचल मन शांत हो जाता है और उसमें उच्चतर चेतना का आविर्भाव होता है।

(छ) अवधू ईड़ा मारग चन्द्र मणीजै। प्यंगुला मारग भानं।।

सुषमनां मारग बांणी बोलिये। त्रिय मूल अस्थांनं।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में नाड़ी-साधना को समझाया गया है। इंद्रिय-निग्रह से आसन, प्राण-साधना से प्राणायाम और मन-साधना से प्रत्याहार सिद्ध हो चुकने के बाद साधक नाड़ी साधना में प्रवृत्त होता है। शरीर में प्राण-वायु को वहन करने वाली कई नाड़ियाँ हैं। इनमें तीन प्रमुख हैं- इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इड़ा बाईं ओर स्थित होती है और पिंगला दाहिनी ओर। इन दोनों के मध्य सुषुम्ना नाड़ी होती है, जिससे कुंडलिनी शक्ति उपर की ओर प्रवाहित होती है।

गोरखनाथ ने यहाँ इड़ा नाड़ी को चंद्र और पिंगला नाड़ी को सूर्य कहा है। वे कहते हैं कि मूलाधार चक्र के त्रिकोण में स्थित कुंडलिनी को ऊर्ध्वमुख या ऊपर की ओर सक्रिय करने के लिए सुषुम्ना-पथ को उन्मुक्त करना पड़ेगा। सांसारिक माया मे बँधे जीव की इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही सक्रिय रहती हैं। सुषुम्ना का मार्ग प्रायः बंद रहता है। इसलिए बद्धजीव की इंद्रियाँ और चित्त बहिर्मुख होते है। जब सुषुम्ना जागृत हो जाती है तो साधक में कुंडलिनी शक्ति भी जाग उठती है।

(ज) घसै सहंस इकीसौं जाप। अनहद उपजै आपदि आप ।।

बंकानालि मैं ऊगै सूर । रोम रोम धुनि बाजै तूर।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की ये पंक्तियाँ कुंडलिनी-जागरण, षट्चक्र-भेदन, अजपा जाप और अनाहत नाद से संबंधित है। हठयोग में कुंडलिनी शक्ति को जगाया जाता है। समष्टि रूप से सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त महाकुंडलिनी व्यष्टि रूप से जीव में 'कुंडलिनी' नाम से स्थित होती है। सामान्य जीवों की कुंडलिनी शक्ति सुषुप्तावस्था में रहती है। योगी क्रमशः इंद्रिय-निग्रह, प्राण-साधना, मन-साधना, रसायन सिद्धि तथ नाड़ी-साधना के बाद इसे जागृत कर पाता है। शरीर में ऊर्ध्व रूप से स्थित क्रमशः छह चक्रों- मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामक चक्र- का भेदन करती हुई कुंडलिनी सहस्त्रार स्थित ब्रह्मरंध्र का स्पर्श करती है। यहां सहस्त्रदल कमल स्थित चंद्र अमृत की वर्षा करता है। षट्चक्र-भेदन की इस प्रक्रिया के समानांतर "अजपा जाप" अर्थात् अव्यक्त आंतरिक जाप की प्रक्रिया भी जारी रहती है। षट्चक्र-भेदन के बाद सुरति, अर्थात् शब्द-योग की अनुभूति होती है, जिसे 'नाद' कहते हैं। इस आनंददायी अवस्था का सुख शब्दों द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता।

गोरखनाथ उपरोक्त प्रक्रिया के बारे में ही बता रहे हैं। वे कहते हैं कि चक्रभेदन में पूर्णतः लीन होने और निरंतर अजपा जाप करने के बाद सुरति शब्द-योग की सिद्धि होगी, अर्थात अनाहत नाद उत्पन्न होगा। बंकानालि अर्थात् सुषुम्ना नाड़ी के माध्यम से जब कुंडलिनी ब्रह्मरंध का स्पर्श कर लेगी तो ज्ञान का प्रकाश फैल जाएगा। इस अवस्था में साधक का रोम-रोम पुलकित हो जाता है।

(झ) मारिवा तौ मन मीर मारिवा, लूटिवा पवन भंडारं।

साधबा तौ पंच तत सधिबा, सेइबा तौ निरंजन निराकारं।।

माली लौं भल माली लौ, सीचैं सहज कियारी।

उनमनि कला एक पहूपन पाई, ले आवागमन निवारी।।

अर्थ- चौरंगीनाथ कहते हैं कि यदि मारना है तो शासनकर्ता मन को मारो और लूटना है तो शरीर के अन्दर संचरित होने वाली प्राण-वायु के भंडार को लूटो। उनका तात्पर्य यहाँ मन-साधना और प्राण-साधना से है। वे पुनः कहते हैं कि यदि साधना है तो पांच तत्त्वों से निर्मित इस शरीर को साधो और सेवा या आराधना करनी है तो निराकार परम तत्त्व की करो। चौरंगीनाथ की शिक्षा है कि सच्चे गुरू रूपी माली का साथ करने से साधना रूपी क्यारी को सींचनें में आसानी होगी। इसके बाद उनमनी कला के माध्यम से जो पुष्प प्राप्त होगा उससे सांसारिक चक्र से मुक्ति मिल जाएगी।

कुंडलिनी जब ब्रह्मरंध्र का स्पर्श कर लेती है तब मन पूर्णतः शांत हो जाता है और सांसारिक विषयों से उदासीन होकर अंतर्मुख बन जाता है, अर्थात् उसकी गति बाहर के बजाय भीतर की ओर हो जाती है। इसी स्थिति को उनमनी या उनमन दशा या अतिचेतनावस्था कहते हैं। इस दशा में पहुँचने के बाद ही साधक को अनाहत नाद सुनाई पड़ता है। साधक सहस्त्रदल कमल से बरसने वाला अमृत-रस चखता है और परमात्मा के प्रकाश से ऊर्जस्वित आनंदित होने लगता है।

2. अभ्यास प्रश्न

सत्य/असत्य बताएँ

(क) गोरखनाथ ने भोग को रोग के समान बताया है।

(ख) प्राण-साधना के अंतर्गत प्राण-वायु के नियमित संचालन का अभ्यास किया जाता है।

(ग) नाथों के अनुसार आसक्ति को त्याग देने वाला मनुष्य भयभीत रहता है।

(घ) नाथ साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग किया गया है।

12.5 आदिकालीन नाथ साहित्यः गैर सैद्धांतिक पाठ

(क) निसपती जोगी जानिबा कैसा। अगनी पाणी लोहा माने जैसा।

राजा-परजा सम करि देष। तब जानिबा जोगी निसपतिका भेष।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने इन पंक्तियों मे समदर्शी और निष्पक्ष होने की सलाह दी हैं। वे निष्पक्षता का उदाहरण अग्नि, जल और लोहे के गुणधर्म से देते है। जिस प्रकार ये तीनों अपने गुणधर्म के व्यवहार

के क्रम में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करते, उसी प्रकार निस्पृह योगी को भी सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए। उदाहरण के लिए, अग्नि का गुणधर्म जलाना है और जब यह जलाती है तो उसके मार्ग में जो कुछ भी आता है उसे बिना किसी पक्षपात के जलाती चलती है। इसलिए गोरखनाथ राजा और प्रजा के साथ एकसमान व्यवहार करने अर्थात् ऊंच-नीच का भेद न मानने की शिक्षा देते हैं।

(ख) हसिबा खेलिबा गाइबा गीत।

दृढ़ करि राषि अपना चीत।।

षाए भी मरिए अपखाए भी मरिए।

गोरख कहै पूता संजमि ही तरिए।। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने हठयोग रूपी साधना-पद्धति प्रदान की थी, लेकिन वे शरीर को केवल कष्ट देने के पक्षधर नहीं थे। इसीलिए इन पंक्तियों में वे कहते हैं कि हंसते-खेलते-गाते हुए, अर्थात् प्रसन्नचित रहते हुए चित्त की दृढ़ता बनाए रखनी चाहिए। मनुष्य के लिए चित्त की दृढ़ता आवश्यक है और इसके लिए प्रसन्नचित्त रहना आवश्यक है।

इसी प्रकार, अधिक मात्रा में खाने से भी मृत्यु निश्चित है और कम मात्रा में भी खाने से भी। इसीलिए संयम बरतने में ही भलाई है। गोरखनाथ के अनुसार किसी भी प्रकार का अतिवाद नाश को निमंत्रण देता है, जबकि संयम सफलता की कुंजी है।

(ग) थोड़ो खाइ तो कलपै झलपै, घणों खाइ तो रोगी।

दहूँ पषा की संधि विचारैं, ते को बिरला जोगी।।

यह संसार कुबधि का खेत, जब लगि जीवे तव लगि चेत,

आँख्याँ देखै, कान सुणै, जैसा बाहै तैसा लुणै। (जलन्धरनाथ)

अर्थ- आवश्यकता से कम खाने वाला अशक्त शरीर के कारण रोता-कलपता है और आवश्यकता से अधिक खाने वाला रोगग्रस्त हो जाता है। जो दोनों परिणतियों को ध्यान में रखकर बीच का रास्ता अपनाता है वह दुर्लभ योगी के समान है। यह संसार तमाम तरह की कुव्याधियों से पटा पड़ा है।

इसीलिए मनुष्य जब तक जीवित है तब तक उसे सचेत होकर रहना चाहिए। उसे अपने पर्यवेक्षण (देखे और सुने) के आधार पर विवेक का प्रयोग करते हुए निर्णय लेना चाहिए।

जलन्धरनाथ ने इन पंक्तियों में दो अतिवादों के मध्य संतुलन साधने और सांसारिक मामलों में विवेक का प्रयोग करने की शिक्षा दी है।

(घ) संयम चितवो जुगत अहार। न्यंद्रा तजौ जीवन का काल।

छाड़ौ तंत्र-मंत्र वेदंत। जंत्रं गुटिका घात पषंड।

जड़ी-बूटी का नांव जिनि लेहु। राज-दुवार पाव जिनि देहु।

थंभन मोहन वसिकरन छाड़ौ औचाट। सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट।

जड़ी-बूटी भूलै मति कोइ। पहली रांड वैदकी होइ।

जड़ी-बूटी अमर जे करै। तौ वैद धनंतर काहे को मरै।

छोड़ो बैद-वणज-व्यौपार। पढ़िबा गुणिबा लोकाचार।

पूजा-पाठ जपौ जिनि जाप। जोग मांहि बिटंबौ आप।। (गोरखनाथ)

अर्थ: गोरखनाथ ने इन पंक्तियों में भोली-भाली जनता को फुसलाने-बहकाने वाले पाखंडी-पुरोहितों और झाड़-फूँक करने वाले तांत्रिकों के साथ-साथ नीम-हकीमों की भी खबर ली है। वे कहते है कि चित्त और खान-पान में संयम धारण करना चाहिए। उन्होंने निद्रा को जीवन के लिए काल के समान बताया है। यहाँ निद्रा का तात्पर्य अपने परिवेश की विसंगतियों, झूठ-फरेब आदि की ओर से आँखें मूँद लेना है। गोरखनाथ इसलिए तंत्र-मंत्र और वेद-पुराण के साथ-साथ यंत्र-ताबीज आदि पाखंडों को भी त्यागने को कहते हैं।

गोरखनाथ योगियों को योग-मार्ग अपनाने से पहले कुछ सलाह देते हैं। उनकी सलाह है कि जड़ी-बूटी के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए और राज दरबार में भी नहीं जाना चाहिए। वे जादू-टोने, सम्मोहन-वशीकरण आदि को भी त्यागने को कहते हैं। इन निषेधों या अस्वीकार के बाद ही योग का मार्ग आरंभ होता है। गोरखनाथ का तर्क है कि जड़ी-बूटी से कुछ नहीं होता, क्योंकि वैद्य की पत्नी ही पहली विधवा होती है। जो वैद्य दूसरों को रोगमुक्त करता चलता है वह स्वयं भी काल के ग्रास से

बच नहीं पाता। उनका अमोघ प्रश्न है कि यदि जड़ी-बूटी से मनुष्य अमर हो सकता तो फिर प्रसिद्व वैद्य धन्वंतरि की मृत्यु क्यों हो गई? यहाँ उल्लेखनीय है कि निरूत्तर कर देने वाले ऐसे ही अमोघ प्रश्न हम आगे चलकर कबीर की कविता में भी पाते हैं। उदाहरण के लिए-

जो तू बाभन बभनी जाया, आन बाट ह्वै काहे न आया।

जो तू तूरक तुरकनी जाया, भीतरि खतना क्यों न कराया।।

गोरखनाथ उपरोक्त खंडनों के बाद यह सलाह देते है कि इन पाखंडपूर्ण व्यापारों से परे रहकर लोकाचार अर्थात् जनसामान्य में प्रचलित व्यवहारों को भली-भांति देखना-परखना चाहिए और पूजा-पाठ आदि कर्मकांडों के बजाय योग के द्वारा अपना उत्कर्ष स्वयं साधना चाहिए।

(ङ) इक लाल पटा एक सेत पटा। इक तिलक जनेऊ लमक लटा।

जब लहीं ऊलटी प्राण घटा। तब चरपट भूले पेट नटा।

जब आवैगी काल घटा। तब छोड़ि जाइगे लटा पटा।

सुणि सिखवंती सुणि पतिवंती। इस जग महि कैसे रहणां।

अखी देखन कंणी सुनण मुख सो कछू न कहना

बकते आगे स्रोता होइ रहु धौक आगे मसकीना।

गुरू आगे चेला होइबो एहा बात परबीना

मन महि रहना भेद न कहना बोलिबो अमृत बानी

अगला अगन होइबा औधू आप होइबा पानी

इहु संसार कंटिकों की बाड़ी निरख निरख पगु धरना

चरपट कहै सुनहु रे सिधो हठि करि तपु नहीं करना (चर्पटनाथ)

अर्थ- चर्पटनाथ इन पंक्तियों में व्यावहारिक शिक्षा दे रहे हैं। वे कहते हैं कि कोई लाल वस्त्र, कोई श्वेत वस्त्र और कोई तिलक-जनेऊ के साथ-साथ लहराती हुई चोटी धारण किए घूम रहा है। लेकिन जब मृत्यु आएगी तो नट रूपी इस पेट को, जो मनुष्य से तरह-तरह के स्वांग रचवाता है, भूलना पड़ेगा।

उस समय ये वस्त्र और चोटी साथ नहीं देंगी। इसलिए चर्पटनाथ परमात्मा के प्रति पतिव्रता नारी के समान समर्पित जीवात्मा रूपी मनुष्य को इस संसार में रहने का तरीका समझाते हैं।

वे कहते हैं कि देखो-सुनो, लेकिन कुछ कहो मत। बहस करने वाले के सामने श्रोता बनकर रहो, जिस प्रकार ताप उगलती धौंकनी के सामने जल से भरा मशक शांत रहता है। गुरू अर्थात् ज्ञानी पुरूष के सामने चेला अर्थात् जिज्ञासु बन कर रहना बड़ी बात है। वे यह भी सीख देते हैं कि अपने रहस्यों को दूसरों के सामने प्रकट नहीं करना चाहिए और सामने वाला यदि क्रोध में है तो स्वयं को शांत रखना चाहिए। चूंकि यह संसार समस्याओं से भरा है, इसलिए सोच-समझकर कदम उठाना चाहिए। अंततः चर्पटनाथ की सलाह यह है कि जिद पर आकर तपस्या अर्थात् कोई विशेष या महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं करना चाहिए।

(च) हबकि न बोलिबा ठबकि न चलिबा धीरै धरिबा पांव।

गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रांव।।

यंद्री का लड़बडा जिम्भा का फूहड़ा, गोरब कहें ते परतषि चूहड़ा।

काछ का जती मुख का सती, सो सत पुरूष उतमो कथी। (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ की इन पंक्तियों में आचार-संयम और इंद्रिय-संयम पर बल दिया गया है। गोरख की शिक्षा यह है कि बिना सोचे-विचार और हड़बडी में नहीं बोलना चाहिए। इसी प्रकार, पैरों को पटक-पटककर चलने के बजाए धीरे-धीरे संभलकर पाँव रखने चाहिए। मनुष्य को घमंड न करके सरल और सहज भाव से रहना चाहिए। गोरख कहते हैं कि जिस पुरूष का अपनी इंद्रिय पर नियंत्रण नहीं है, अर्थात् जो काम-वासनाओं पर नियंत्रण नहीं करता और जिसकी बातें फूहड़ हों उस पुरूष को पतित या निम्न कोटि का मनुष्य समझना चाहिए। श्रेष्ठ पुरूष वह कहलाता है जिसका अपनी कामेच्छाओं पर नियंत्रण होता है और जिसके मुख से सद्-वचन निकलते हैं।

(छ) अवधू मांस भषन्त दयाधरम का नास
मद पीवत वहाँ प्राण नीरास
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवंत
जम दरबारी ने प्राणी रोवंत (गोरखनाथ)

अर्थ- गोरखनाथ ने माँसभक्षण और नशा-सेवन का घोर विरोध किया है। इन पंक्तियों में वे कहते है कि माँस खाने से मनुष्य के अंदर का दयाभाव नष्ट हो जाता है और मदिरा या शराब पीने से उसकी

जीवनशक्ति क्षीण होती है। इसी प्रकार, भाँग खाने से मनुष्य का बुद्धि-विवेक लुप्त हो जाता है। इन चीजों का सेवन करने वाले प्राणि को यमराज के दरबार में रोना पड़ता है, अर्थात् आसन्न काल के समक्ष उसकी एक नहीं चलती। अतः मनुष्य को अपने अंदर के दयाभाव, जीवनशक्ति और बुद्धि-विवेक के संरक्षण के लिए इन चीजों का सेवन नहीं करना चाहिए। गोरखनाथ ने इन चीजों को योगियों के लिए भी त्याज्य और निंदा का कारक बताया है-

जोगी होइ पर निंदा झखै। मद माँस अरू भांगि जो भखै।

इकोतर सैं पुरिषा नरकहिं जाई। सति-सति भाषंत श्री गोरख राई।।

(ज) बैठे राजा बैठे परजा,

बैठे जंगल की हिरणी।

हम क्यों बैठे रावल बावल,

सारी नगरी फिरणी।

ना घरि तिय ना पर तिय रता,

ना घरि धन न जीवन मता।

ना घरि पूत न धीय कुंआरी,

ताते चरपट नींद पियारी।।

(चर्पटनाथ)

अर्थ: चर्टपनाथ की इन पंक्तियों से योगी-सुलभ मनमौजीपन झलकता है। वे कहते हैं कि राजा और प्रजा अर्थात् पूरे समाज के साथ-साथ, स्वभावतया विचरण करने वाली जंगल की हिरणी भी बैठ जाए तो क्या। हम बावले योगी तो हर जगह विचरण करते फिरेंगे, क्योंकि हमें कोई चिंता या किसी वस्तु अथवा विषय के प्रति आकर्षण नहीं है। न घर में स्त्री (पत्नी) है और न ही मैं किसी पराई नारी में अनुरक्त हूँ। साथ ही, न घर में धन है और न ही कोई पुत्र या कुंवारी पुत्री है। चर्पट कहते हैं कि इसीलिए हमें तो नींद ही प्यारी है।

3. अभ्यास प्रश्न

(1) 'थोड़ो रवाइ तो कलपै झलपै, घणो खाइ तो रोगी।' इस पंक्ति के रचनाकार कौन हैं-

(क) गोरखनाथ (ख) चर्पटनाथ

(ग) जलंधरनाथ (घ) चौरंगीनाथ

(2) गोरखनाथ के अनुसार इनमें से कौन अपने व्यवहार में निष्पक्ष होते हैं-

(क) अग्नि, राजा, लोहा (ख) जल, अग्नि, दूध

(ग) लोहा, दूध, जल (घ) अग्नि, जल, लोहा

(3) सत्य/असत्य बताएँ

(क) गोरखनाथ ने योगी के लिए मांस-मंदिरा का सेवन आवश्यक बताया है।

(ख) गोरखनाथ ने निद्रा को जीवन के लिए काल के समान बताया है।

(ग) चर्पटनाथ ने क्रोध का जवाब क्रोध से देने को कहा है।

(घ) नाथ कवियों ने आचार-संयम पर जोर दिया है।

12.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि आदिकालीन नाथ साहित्य में साधना-पद्धति के निरूपण के अलावा वाह्याचारों का विरोध, रूढ़ियों का खंडन तथा नीतिपरक उपदेश भी मिलते हैं। नाथ कवियों की रचनाओं में क्षेत्रीय भाषिक प्रयोगों के साथ-साथ पारिभाषिक शब्दों तथा प्रतीकों का प्रयोग भी मिलता है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप आदिकालीन नाथ साहित्य की विषय और भाषा के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।

12.7 शब्दावली

पंच तत - क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर नामक पाँच तत्व।
पहूप-पुष्प।
पषा - पक्ष।
पडरवा - पशु।
रावल - राजा, संतों- साधुओं के लिए आदरसूचक संबोधन।

दमामा - नगाड़ा।
ऊँटा - श्वास।
धौक - लुहार की धौंकनी।
बंकानालि- सुषुम्ना नाड़ी।
मसकीना- मशक या चमड़े से बनी पानी रखने की थैली।
घणो- अधिक।
यंद्री- इंद्रिय।

12.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आदिकालीन नाथ साहित्य: पाठगत विशेषताएँ

(1) (क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) असत्य

2. आदिकालीन नाथ साहित्य: सैद्धांतिक पाठ

(क) सत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

3. आदिकालीन नाथ साहित्य: गैर-सैद्धांतिक पाठ

(1) (ग) जलन्धर नाथ (2)(घ) अग्नि, जल, लोहा

(3) (क) असत्य (ख) सत्य (ग) असत्य (घ) सत्य

12.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची-

1. गोरखबानी, (सं0) डॉ0 पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् 1999

2. हिन्दी काव्य-धारा, राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 19125

3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, डॉ.रामकुमार वर्मा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

12.10 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. डॉ.पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के श्रेष्ठ निबन्ध, (सं.) डॉ.गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

2. हिन्दी काव्य की निर्गुण धारा, पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली

3. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

12. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली

5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, वाराणसी

12.11 निबंधात्मक प्रश्न

(1) आदिकालीन नाथ साहित्य की विषयगत तथा भाषागत विशेषताओं का उदारण सहित परिचय दें।

(2) गोरखनाथ की किसी उलटबाँसी का उदाहरण देते हुए उसका अर्थ स्पष्ट करें।

इकाई 13 आदिकालीन जैन साहित्यः परिचय एव स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्धेश्य
13.3 आदिकालीन जैन साहित्य
13.3.1 प्रबंधात्मक साहित्य
13.3.2 मुक्तक साहित्य
13.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव
13.4.1 काव्यवस्तु संबंधी प्रभाव
13.4.2 काव्यरूप संबंधी प्रभाव
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
13.9 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य की आदिकालीन कविता से सम्बन्धित यह इकाई जैन काव्य साहित्य से सम्बंधित है। इसके पूर्व की इकाइयों में आप आदिकालीन सिद्ध और नाथ साहित्य की विशेषताओं से परिचित हो चुके हैं। सिद्ध-नाथ साहित्य के समान आदिकालीन जैन साहित्य भी आदिकालीन हिन्दी साहित्य का महत्त्व पूर्ण अंग है।

प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन जैन साहित्य की विशेषतओं का परिचय देते हुए परवर्ती हिन्दी साहित्य पर इसके प्रभाव को स्पष्ट किया गया है।

13.2 उद्देश्य

आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश भाषा में रचा गया है। पुष्पदंत, स्वयंभू जैसे महाकवियों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम अपभ्रंश को बनाया। स्थानभेद की विशेषताओं के आधार पर अपभ्रंश के दो रूप किए गए हैं-पूर्वी अपभ्रंश और पश्चिमी अपभ्रंश। जैन कवियों की रचनाएँ पश्चिमी अपभ्रंश का उदाहरण है। आदिकालीन जैन साहित्य का अधिकांश देश के पश्चिमी भागों- गुजरात, राजस्थान आदि- से प्राप्त हुआ है। जैन साहित्य की प्रामाणिकता और महत्व पर प्रकाश डालते हुए पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- दसवीं शताब्दी से पहले की जो रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से 'हिन्दी रचनाएँ मानी जाती है, उनमें प्रायः सबकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। और यदि किसी प्रकार उनके मूल रूप का पता लग भी जाए तो भी वे मध्यप्रदेश के किनारे पर पड़े हुए प्रदेशों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन जैन आचार्यों और कवियों की रचनाएँ निसंदेह मूल रूप में और प्रमाणिक रूप में सुरक्षित हैं। उनके अध्ययन से तत्कालीन साहित्यिक परिस्थिति पर जो भी प्रकाश पड़ता है वह वास्तविक और विश्वसनीय है।'' जैन साहित्य में प्रबन्धात्मक ओर मुक्तक काव्यधाराएँ मिलती है। प्रबन्धकार कवियों में स्वयंभू, पुष्पदन्त, हरिभद्रसूरि, विनयचन्द्र सूरि, कनकामर मुनि, धनपाल आदि प्रमुख हैं। मुक्तक काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं- जाइन्दू, रामसिंह और देवसेन। जैन प्रबन्धात्मक काव्यों की तीन काटियॉं हैं - पुराणकाव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्यं

पुराण काव्य - ब्राह्मणों ने जिस प्रकार पुराणों की रचना की उसी प्रकार जैनों का भी अपना पुराण साहित्य है। सामान्य तौर पर दिगंबर जैनों के धार्मिक साहित्य का चार भागों में बांटा जाता है- प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और दुव्यानुयोग। प्रथमानुयोग में तीर्थकारों के चरित्र का वर्णन किया जाता है। यही महापुराण है। महापुराण या पुराण साहित्य में जैन तीर्थकारों, बलदेव, वासुदेवों, प्रतिवासुदेवों आदि तिरेसठ महापुरूषों की जीवनगाथाओं को लेकर विशाल साहित्य सृजन हुआ है।जैन साहित्य में पुष्पदन्त कवि का महापुराण अथवा ति-सठि महापुराण काव्य का उदाहरण है, जिसमें 24 तीर्थकारों, 12 चक्रवतियों, 9 बलदेवों, 9 नारायणों और 9 प्रतिनारायणों का जीवनचरित्र काव्यात्मक ढंग से वर्णित है। 'महापुराण' दो भागों में विभाजित है- आदिपुराण और

उत्तर पुराण में राम और कृष्ण की कथा भी वर्णित है जो हिन्दी साहित्य में रामकाव्य, और कृष्णकाव्य की दृष्टि से महत्त्व पूर्ण है।

चरितकाव्य-पौराणिक चरित्रों के अतिरिक्त आदिकालीन जैन साहित्य में कुछ ऐसे चरित्र काव्य हैं जसे जैन परम्परा के लोकप्रिय चरित्रों को आधार बनाकर लिखे गए हैं। पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और 'जसहर चरिए' तथा कनकामर मुनि का 'करकडु चरिउ' जैन परम्परा में लिखे गए इसी प्रकार के चरितकाव्य हैं।

कथाकाव्य - पुराण और चरित काव्यों में जहाँ पौराणिक चरित्रों और जनश्रुतियों में प्रसिद्ध राजकुमारों के चरित्रों का काव्यात्मक वर्णन हुआ है वहीं कथाकाव्य में कथा कवि की कल्पना से जन्मी है या फिर किसी लोकथा को आधार बनाकर कवि ने अपनी कल्पना को परवान चढ़ाया है। ऐसे कथाकाव्यों का चरितनायक कोई सामान्य वणिक-पुत्र होता है। उदाहरण के तौर पर धनपाल द्वारा रचित 'भविस्सत कहा' (भविष्यस्त कथा) में वणिक-पुत्र भविष्यस्त की कथा कही गई है।प्रबन्धात्मक श्रेणी की उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त जैन मतावलम्बी कवियों की मुक्तक रचनाएँ भी मिलती है। इनमें जोइन्दु कवि की ' परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और योगसार और मुनिरा सिंह की 'पाहुड़ दोहा' महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इन रचनाओं में सामान्य ढंग से रूढ़ियों का खंडन, रहस्यवाद और नीति एवं आचार विषयक शिक्षा दी गई है। आदिकालीन जैर साहित्य की विपुल सामग्री आज उपलब्ध है। अगले दो उपखंडों में आप प्रमुख जैन कवियों की प्रबन्धात्मक एवं मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं से परिचित होंगे।

अभ्यास प्रश्नः-

1- सत्य असत्य बताएं

क- आदिकालीन जैन साहित्य अधिकांशतः पश्चिमी अपभ्रंश में रचित हैं।

ख- जैन साहित्य प्रामाणिक रूप में उपलब्ध नहीं होता ।

ग- आदिकालीन जैन कवियों ने मुक्तक काव्य रूप नहीं अपनाया।

13.3 आदिकालीन जैन साहित्य

13.3.1 प्रबन्धात्मक साहित्य-

पुराण काव्य - जैन कवियों ने पौराणिक कथानकों को लेकर काफी मात्रा में रचनाएँ की हैं। इन रचनाओं में यद्यपि पौराणिक परम्परा के जैन तीर्थकारों के अतिरिक्त राम-कृष्ण आदि नायकों को लेकर भी प्रबन्ध रचनाएँ हुई हैं। किन्तु राम, कृष्ण आदि की कथाओं को जैन मत के अनुसार

रूपांतरित करने का प्रयत्न भी जैन कवियों ने किया है। इन रचनाओं में धर्म, उपदेश और साहित्यिकता का समावेश मिलता है। प्रबंधात्मक जैन साहित्य के पुराण काव्य की विशेषतओं से परिचित होने के लिए स्वयंभू और पुष्पदन्त के काव्य का प्रतिनिधिक उदाहरण लिया जा सकता है।

स्वयंभू का काव्य - स्वयंभू को अपभ्रंश का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इन्हें 'अपभ्रंश का वाल्मीकि' कहा गया है। इनका समय आठवीं शताब्दी है। स्वयंभू मूलतः उत्तर के निवासी थे, परन्तु बाद में वे अपने संरक्षक रथडा धनंजय के साथ दक्षिण के राष्ट्रकूट राज्य में चले गए। स्वयंभू द्वारा रचित चार ग्रन्थ बताए जाते हैं- 'पउम चरिउ' (पद्मचरित अथवा रामचरित),'रिट्ठनेमिचरिउ' (अरिष्टनेमि चरित या हरिवंशपुराण), ' पंचमिचरिउ' (नागकुमार चरित) और 'स्वयंभू छन्द'. स्वयंभू की ख्याति का आधार उनका 'परउमचरिउ' अथवा 'रामचरित' नामक काव्यग्रन्थ है। पॉच कांडों और तिरासी संधियों में विभक्त यह रचना अपभ्रंश का आदिकाव्य मानी जाती है। अपने इस महाकाव्य के आरम्भ में स्वयंभू ने पंडितों से निवेदन करते हुए लिखा है-' मेरे समान कुकवि कोई दूसरा न होगा, न तो मैं , कुछ व्याकरण जानता हूँ और न वृत्तिकासूत्र की व्याख्या ही कर सकता हूँ, न मैंने पाँचों महाकव्यों को सुना है न पिंगल प्रस्तार आदि छन्द लक्षण ही जानात हूँ। भामह, दन्डी आदि के अलंकारशास्त्र से भी मैं परिचित नहीं हूँ फिर भी मैं काव्यरचना का व्यवसाय छोड़ने में असमर्थ हूँ।' स्वयंभू का यह कथन उनकी विनम्रता का प्रदर्शन है। वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मैं 'गामेल्ल भास' अर्थात् जनता की भाषा में जनता के लिए काव्य का निर्माण कर रहा हूँ। स्वयंभू के राम तुलसी के राम की तरह परब्रह्म के अवतार नहीं हैं, अपनी सम्पूर्ण मानवीय दुर्बलताओं के साथ मानवीय शक्ति के प्रतिनिधि हैं। स्वयंभू ने राम को एक सामान्य मनुष्य के रूप में चित्रित किया है जो आपदाओं के विरूद्ध लड़ते हुए पौरूष के प्रतिमा है तो दसूरी ओर लक्ष्मण को शक्ति लगने पर एक साधारण मनुष्य की तरह रोते-बिलखते भी हैं। वे कर्मयोद्धा हैं। अपनी पत्नी को वापस पाने के लिए वे समुद्र पार करके रावण से युद्ध करते हैं और जब अपनी पत्नी को रावण के चंगुल से छुडा़ने में सफल हो जाते हैं तो एक सामन्य पुरूष की भांति उसके चरित्र पर शक करते हैं, उसकी अग्निपरीक्षा लेते हैं।बड़े कवि को प्रबन्धकाव्य में मार्मिक प्रसंगों का ज्ञान होना चाहिए। इन मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में उसका मन रमना चाहिए। स्वयंभू अपभ्रंश के बड़े कवि हैं। 'पउमचरिउ' के मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में वे रमते हैं। अपने वाक्कौशल एवं कल्पना-कौशल के द्वारा उन्होंने कई मार्मिक प्रसंगों का अद्भुत संवेदनशील चित्रण किया है। नारी के प्रति पुरूष के दृष्टिकोण को राम के चरित्र के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए स्वंयभू लिखते हैं-

''पुक्क-विमाणे चडिए अणुराएं परिमिय विज्जाहर- संधाएं

कोशल-ण्यरि पराइय जावहिं दिणमणि गउ अत्थ वण होतावटिं

जत्थ हो पियगमेण णिरवासिम। ''

अर्थात्- सीता पुष्पक विमान पर चढ़कर बड़े अनुराग से अयोध्या आती है, विद्वानों का समूह उन्हें घेरे हुए है। लकिन सीता को कोशल नगरी पराई लगने लगती है क्योंकि सूर्यास्त के बाद भी उन्हें महल में जगह नहीं दी जाती है पति महल में है और पत्नी उपवन में रात गुजार रही है। नारी के प्रति पुरूष का दृष्टिकोण निम्न पंक्तियों में और अधिक उभरता है- 'कंतहि तणिय कंति पेक्खेप्पिणु

पभणइ पोम जाहु विहसेप्पिणु

जइ कि कुलग्गयाउ णिरवज्जहु

महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ।'

राम और सीता एक-दूसरे को देखते हैं। दोनों की ऑखों में मिलन की आकांक्षा दिखती है, पर राम व्यंग्य से मुस्कराते हुए धिक्कार भरे स्वर में कहते हैं- नारी अशुद्ध होती है, निर्लज्ज होती है और मलिनमति होती है। वह त्रिभुवन में अपने कुल को अशुद्ध कर अपयश फैलाती है।जैसा कि बताया जा चुका है, स्वयंभू के राम और सीता परब्रह्त या शिव-शक्ति के अवतार नहीं हैं। वे साधारण स्त्री-पुरूष के रूप में चित्रित हुए हैं। हालांकि स्वयंभू की सीता पुरूष का अनुकरण करने वाली सीधी-सादी स्त्री के रूप में नहीं आती, बल्कि वह पुरूष के आचारण एवं नैतिकता पर प्रश्न उठाने वाली तेजस्वी नारी के रूप में चित्रित हुई है. राम की मलिन वाणी सुनकर भी सीता भयभीत नहीं होतीं वह कहती हैं कि पुरूष गुणवान होकर भी विहीन होते हैं, वे मरती हुई स्त्री का भी विश्वास नहीं करते । वे उस रत्नाकर की तरह होते हैं जो क्षर देकर भी नदियों से नहीं विरमता। स्त्री-पुरूष के अन्तर को उदाहरण द्वारा समभाती हुई सीता कहती है कि दोनों में अन्तर इतना ही है कि मरने पर भी लता तरूवर को नहीं छोडती। स्त्री-हृदय की पीडा़ की अभिव्यक्ति इससे बढ़कर और क्या होगी, जब सीता कहती है कि इस दोष से मुक्त होने का एक ही उपाय है कि कुछ ऐसा किया जाय जिससे स्त्री योनि में फिर से जन्म न लेना पड़े -

'एमहि तिह करोमि पुणु रहुवइ

जिह ण होमि पडि वार तिय भई।'

स्वयंभू ऐसे संवेदनशील कवि थे जो विभिन्न परिस्थितियों के मध्य पड़े मनुष्य के भावों, विचारों और किकारों की सच्ची परख रखते थे। स्वयंभू के रामकाव्य में आहत लक्ष्मण के लिए राम का विलाप और मृत रावण के लिए विभीषण का विलाप जैसे कई प्रसंग है जहाँ उनकी लेखनी पाठक को भाव-मग्न कर देती है।'रिट्ठनेमिचरउि' या 'हरिवंशपुराण' में स्वयंभू ने जैन परम्परा के बाइसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि और कृष्ण की कथा का वर्णन किया है।

पुष्पदन्त का काव्य - पुष्पदन्त अपभ्रंश के दूसरे बड़े कवि हैं। इनका समय दसवीं शताब्दी का है। ये ब्राहमण थे और रौव मतानुयायी थे। बाद में इन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली। इनका अधिकांश समय

राष्ट्रकूट राज्य की राजधानी मान्यरवेत में व्यतीत हुआ था। पुष्पदन्त स्वभाव से अक्खड़, स्वाभिमानी और स्पष्टवादी थे। उन्होंने बड़े गर्व से स्वयं को 'अभिमान मेरू' कहा है। पुष्पदन्त की रचनाओं में 'महापुराण' तथा 'णायकुमार चरिउ' महत्त्वपूर्ण हैं। वैसे पुष्पदन्त की ख्याति का आधार 'महापुराण' ही है। इसमें उन्होंने रामकथा, कृष्णकथा और जैन तीर्थकारों की जीवनगाथाओं का वर्णन किया है। कट्टर जैन धर्मावलम्बी होने के कारण उन्होंने जैन तीर्थकारों को राम-कृष्ण से अधिक महत्त्व दिया है।

पुष्पदन्त की रामकथा ब्राहमण परम्परा के विरूद्ध जैन परम्परा की रामकथा को स्थापित करने का प्रयास है। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा है- ''वाल्मीकि और व्यास के वचनों ने सबको प्रवंचित किया है..... इन्हीं भ्रमों के दूर करने के लिए गौतम राम की कथा कहते हैं। ..... श्रेणिक गौतम के समान ये शंकाएं रखते हैं कि दशमुख दस मुखों के साथ कैसे पैदा हुआ? वह राक्षस था या मानुष? क्या सचमुख उसके बीस हाथ और बीस आँखें थी?.....क्या विभीषण आज भी जीवित है? क्या कुंभकर्ण छह महीने की घोर निद्रा में सोता था? इन्हीं शंकाओं के निवारण के लिए पुष्पदन्त ने अपनी रामकथा रची है। स्वाभाविक है कि उनकी रामकथा में अतार्किक और अलौकिक बातों से बचने का प्रयास हुआ है।पुष्पदन्त की रामकथा तथ्यात्मक रूप से भी वाल्मीकि और तुलसी की परम्परा से भिन्न है। पुष्पदन्त की रामकथा में राम कौशल्या के नहीं, सुबला के पुत्र हैं। इसी प्रकार लक्ष्मण सुमित्रा के नहीं, कैकेयी के पुत्र हैं। सीता के अतिरिक्त राम की सात पत्नियॉं और थीं। सीता जनक की पुत्री नहीं, बल्कि रावण की पुत्री थी। वानरादि वास्तव में वानर नहीं, बल्कि विद्याधर थे। हनुमान रूद्र के नहीं, कामदेव के अवतार थे, आदि-आदिं. हालांकि पुष्पदन्त ने राम की कथा में अलौकिक प्रसंगों से बचने का प्रयास किया है, लेकिन उनमें स्वयंभू के समान मार्मिक प्रसंगों में रमने की प्रवृत्ति नहीं मिलती। रामकथा में उनका कवित्व उतना नहीं उभरता जितना कृष्णकथा में। 'महापुराण' के उत्तरार्ध में ही उन्होंने कृष्णकथा भी कही है। कृष्ण की बाल-लीला के वर्णन में उन्हें सफलता मिलती है। उदाहरण के तौर पर-

'धूलि धूसरेण वर मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा

कीला रस वसेण गोवालय-गोवी हियय हारिणा

रंगतेण रमत रमंते

मंथउ धरिउ भमंत अणंते।'

अर्थात् - धूल से सना वह कृष्ण ब्रज की गोपियों के हृदय को हरने वाला है। वही क्रीडा़ करता है, गोपियाँ उसकी क्रीडाएं देखकर मुग्ध होती हैं। वह आंगन में दौड़ता फिरता कमी मथानी उठाता है, कभी दही की हांडी तोड़ देता है। स्वयंभू काव्यरचना के क्रम में अपने धार्मिक आग्रहों की बीच में आने नहीं देते। उनमें धार्मिक उदाहरण मिलती है, जबकि पुष्पदन्त में जैन धर्म के प्रति पूर्वांग्रह दिखता है। अपने 'महापुराण' में उन्होंने रामकथा और कृष्णकाव्य की अपेक्षा ऋषभदेव की कथा को

अधिक विस्तार दिया है। इन सबके बावजूद पुष्पदन्त की काव्यप्रतिभा उन्हें अपभ्रंश का दूसरा बडा़ कवि बनाती है। डा.नामवर सिंह के शब्दों में '' स्वयंभू और पुष्पदन्त दानों ही कवि अपभ्रंश साहित्य के सिरमौर हैं। यदि स्वयंभू में भावों का सहज सौंदर्य है तो पुष्पदन्त में बंकिम भंगिमा है। स्वयंभू की भाषा में प्रच्छन्न प्रवाह है तो पुष्पदन्त की भाषा में अर्थगौरव की अलंकृत भांकी। एक सादगी का अवतार है तो दूसरा अलंकरण का उदाहरण।''जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि आदिकालीन जैन कवियों का प्रबंन्धात्मक साहित्य तीन प्रकार का है- पुराण काव्य, चरित्रकाव्य और कथाकाव्य। आपने पुराणकाव्य की विशेषताओं को जाना। अब हम चरित्रकाव्य और कथा-काव्य पर विचार करेंगे।

चरितकाव्य - जैन कवियों ने लोकप्रसिद्ध चरित्रों को केंन्द्र में रखकर कई काव्यों की रचना की। नेमिनाथ, यशोधर, करकंहु आदि कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति है जिनके चरित्र को आधार बनाकर जैन कवियों ने चरितकाव्यों की रचना की है। नेमिनाथ को लेकर हरिभद्र सूरि (11139 ई.) की लिखी - नेमिनाथ चरिउ' और विनयचन्द्र सूरि (1200ई.) की लिखी 'नेमिनाथ चरिपई' ऐसी ही रचनाएँ हैं। 'नेमिनाथ चरिउ'में बारहमासा वर्णन मिलता है। आगे चलकर हिन्दी में बारहमासा वर्णन अधिक प्रचलित हुआ।

जैन चरितकाव्यों में पुष्पदन्त का 'णायकुमार चरिउ' (नागकुमार चरित) और ' जसहर चरिउ' (यशोधर चरित) तथा कनकामर मुनि का ' करकंडु चरिउ' अधिक महत्त्व पूर्ण है।नागकुमार चरित पुष्पदन्त की दसरी रचना है। यह नौ संधियों का छोटा-सा प्रंबधकाव्य है। इसकी रचना श्रुत पंचमी के माहात्म्य को दर्शाने के लिए की गई है। इस रचना में राजकुमार नागकुमार के जन्म, विवाहों, सौतेले भाई से संघर्ष और वीरता का वर्णन मिलता है।'जसहर चरिउ' चार संधियों का छोटा प्रबंधकाव्य है। इसमें कापालिक मत के ऊपर जैन धर्म की विजय की कहानी प्रभावपूर्ण ढंग से कहीं गई है।करकंडु के जीवनचरित पर कनकामर मुनि (10613ई.) का 'करकंडु चरिउ' प्राप्त होता है। जैन पररम्परा के अनुसार करकुडु ईसा से लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व हुए थे और इनका बडा सम्मान था। दस संधियों के इस प्रबन्धकाव्य में तीन-चौथाई में थरकुंड का जीवनचरित्र एव महत्त्वपूर्ण घटनायें वर्णित हैं शेष में अन्य कथाएं कहीं गई है। इन कथाओं का उद्धेश्य जैन धर्म के सिद्धान्तों की स्थापना करना है।

कथाकाव्य - कथाकाव्य वह काव्य है जहॉ मुख्य चरित्र या तो पूर्णतः कविकल्पना की उपज होता है या फिर वही लोक कथाओं का कोई पात्र होता है। इस दृष्टि से आदिकालीन जैन साहित्य में कवि धनपाल (10वीं सदी) द्वारा रचित ' भविस्सत कहा' (भविष्यदत्त कथा) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।'भविस्सत कहा' बाइस संधियों का प्रबंधकाव्य है जो एक लोकप्रचलित कथा पर आधारित है। इसमें वणिक- पुत्र भविष्यदत्त की करूण गाथा है जो अपने सौतेले भाई बन्धुदत्त के द्वारा कई बार धोखे का शिकार होता है और अन्त में जिन महिमा के कारण सुख पाता है।आदिकालीन जैन

प्रबंधकाव्यों में विभिन्न रसों की अवतारण की गई है। डा.नामवर सिंह ने इन काव्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए लिखा है- '' इतने संधि, कुलक, चउपई, आराधाना, रास, चॉचर, फाग, स्तुति, स्तोत्र, कथा, चरित, पुराण आदि प्रकार के काव्यों में मानव जीवन और जगत की अनेक भावनाओं और विचरों की वाणी मिली है। -- यदि एक ओर धार्मिक आदर्शों का व्याख्यान है तो दूसरी ओर लोकजीवन से उत्पन्न होने वाले ऐहिक रस का रागरंजित अनुकथन है । यदि यह साहित्य नाना शलाका पुरूषों के उदार जीवन चरित से संपन्न परिपूर्ण है। ''

अब हम आदिकालीन जैन साहित्य की मुक्तक काव्यधारा की विशेषताओं से परिचित होंगे।

13.3.2 मुक्तक साहित्य-

जैन कवियों ने प्रबंधकाव्य तो लिख ही , साथ ही उन्होंने दोहों के माध्यम से मुक्तक-काव्य की रचना भी की। प्रबंधकाव्यों में जैन कवियों ने कथा को जैन सिद्धान्तों के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया, लेकिन मुक्तक रचनाएँ इस प्रकार के सम्प्रदायगत आग्रहों से मुक्त हैं। इन कवियों की कविता का मूल स्वर रहस्यवादी है। ऐसी रचनाओं में ब्राह्मण एव जैन धर्म की रूढ़ियों, बाह्याचारों और आडम्बरों का विरोध करते हुए लोकसामान्य के लिए सरला ढंग से जीव-मुक्ति का संदेश प्रतिपादित हुआ है। पं.हजारी प्रसाद द्विवदी ने इन मुक्तक काव्यों की साम्प्रदायिकता-मुक्त दृष्टि की प्रशंसा करते हुए लिखा है- '' इन दोहों का स्वर नाथ योगियों के स्वर से इतना अधिक मिलता है कि इनमें से अधिकांश पर से यदि जैन विशेषण हटा दिया जाय तो समझना कठिना हो जाएगा कि ये निर्गुणमार्गियों के दोहे नहीं हैं। भाषा, भाव, शैली आदि की दृष्टि से ये दोहे निर्गुणिया साधकों की श्रेणी में ही आते हैं। ''

अपभ्रंश में निर्गुण मुक्तक काव्य लिखने वाले कवियों में जोइन्दु (10वीं शताब्दी ई.) और मुनिराम सिंह (1100 ई. के आस पास) प्रमुख हैं। जोइन्दु की रचनाएँ हैं परम्म पयासु' (परमात्म प्रकाश) और 'योगसार' तथा मुनिराम सिंह की काव्यकृति 'पाहुड़ दोहा' नाम से प्राप्त होती है।'परमात्म प्रकाश' दो अधिकारों में विभक्त 337 छन्दों में लिखी गई रचना है। इसमें आत्मा, परमात्मा, द्रव्य, गुण कर्म, सम्यक दृष्टि, मोक्ष, मोक्ष के फल आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। जैन कवियों ने उदार दृष्टि से रूढ़ियों, पाखंडों, बाह्याचारों आदि का खंडन करते हुए उस परम तत्व की साधना और उपासना पर बल दिया है जिसे भिन्न-भिन्न मत भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते है। जोइन्दु कहते हैं-

''जो परमप्पउ परम-पउ, हरि-हर-बंभु वि बुद्ध।
परम-पयासु भणंति मुणि, सो जिण-देउ विसुद्ध।।

जोइन्दु ने शास्त्र-ज्ञान की अपेक्षा स्वयं संवेध ज्ञान पर बल दिया। उनका मानना था कि अक्षरज्ञान या शास्त्रज्ञान से ही मुक्ति सम्भव नहीं है। शास्त्र मिथ्या भेद पैदा करने का कारण है। इसलिए ध्यान के

द्वारा ही ज्ञानमय, परमात्मामय हुआ जा सकता है। इन्द्रियों को वश में करके ही परमतत्त्व को प्राप्त किया जा सकता है।

जो जाया झाणग्गिए, कम्म कलंक ऽहेवि।

णिच्च-णिरंजण-जाणमय, ते परमप्प णवेवि।।

अर्थात्,जो ध्यान की अग्नि से कर्मकलंकों को जलाकर नित्य निरंजन ज्ञानमय हो गए हैं, उन परमात्म को मैं नमन करता हूँ।'योगसार' अपेक्षाकृत सरल और मुक्त रचना है। इसमें कुल 108 छंद हैं। जोइन्दु की दानों कृतियॉं दोहा छन्द में रचित हैं। 'योगसार' में कवि कहता है-

''सो सिउ-संकरू विणहू सो, सो रूद्धवि सो बुद्धु।

सो जिणु ईसरू बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध ।।''

अर्थात् - वही शिव है, वही शंकर है, वही विष्णु है, वही रूद्र है, वही बुद्ध है, वही जिन है, वही ईश्वर है, वही ब्रह्मा है, वही अनन्त और वही सिद्ध है। मुनिराम सिंह की रचना 'पाहुड़ दोहा' 222 दोहों की रचना है। पाहुड़ दोहा का शाब्दिक अर्थ है- दोहों का उपहार! पाहुड़ संस्कृत शब्द 'प्रभृत' का रूपान्तर है जिसका अर्थ होता है 'उपहार'।'पाहुड़ दोहा' में राम सिंह ने पुराण पन्थी रूढिवादी प्रवृत्तियों का खण्डन किया है। उन्होंने षड्दर्शन का विरोध किया है जो एक ही ईश्वर के छह भेद कर देता है-

छह दसण धधदू पडिय, मणहंण फिट्टव भांति। ,

एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेणण मोक्खछं जांति।

वे कहते हैं कि षड्दर्शन से भी मन की भ्रान्ति नही टूटी। एक देव के छह भेद किए, इसलिए मोक्ष नहीं मिला। मुनि राम सिंह 'पाहुड़ दोहा' में बाह्याचारों का विरोध करते हुए लिखते हैं कि जो इन सब पूजा-पाठ, व्रत, स्नान आदि में पड़ गया वह मूल तत्त्व तक कमी नहीं पहुँच सकता। यह वैसी ही मूर्खता है जैसे जड़ को छोड़कर डाल को पकड़नां क्या रूई को ओटाये बिना भी कपड़ा बुना जा सकता है-

मूल छांडि जो डाल चढ़ि, कहँ तह जोया भायसि।

चीरूणु बुणणहँ जाइ बढ, विणु उट्टिई कपासि ।।''

जैन मतावलम्बी मुक्तक रचनाकरों के पाखंड विरोध के सम्बन्ध में डा. नामवर सिंह का कहना है- '' व्यवहार के क्षेत्र में यह शास्त्र विरोध और अक्षर खंडन धर्म के ठेकेदार पंडितों और पुरोहितों पर सीधा प्रहार था, दूसरी ओर इसके द्वारा उस जनसाधारण के लिए ज्ञान का सहज

द्वार खुल गया जिन्हें पढ़ने-लिखने की सुविधा प्राप्त न हो सकी थी।'' जैन मुनियों का मानना था कि आत्मज्ञान ही वही ज्ञान है जिसके बाद कुछ जानना शेष नहीं रह जाता। आत्मा ही आत्मा को प्रकाशित करती है जैसे रवि का राग अम्बर को-

'अप्पु पयासइ अप्पु पइ, जिम अम्बरि रवि राउ।'

उन्होंने धर्मोपदेशकों द्वारा अपवित्र बताई जाने वाली देह को देवमन्दिर की गरिमा प्रदान की-

'देहा देवलि जो बसइ, देउ अणाइ अणंतु।'

परमात्मा के इस आवास को स्वच्छ और पवित्र रखा जाए क्योंकि चित्त की निर्मलता में ही देवता का निवास हो सकता है, जैसे सरोवर में हंस लीन रहता है-

''णिय-मणि णिम्मालि णाणियहँ , णिवसइ देउ अणाइ।

हंसा सरिवरि लीणु जिम, महु एहउ पडिहाई।। ''

अभ्यास प्रश्नः-

1- जैन मतावलम्बी चार प्रबंधकार कवियों और उनकी रचनाओं के नाम लिखें।

2- मुक्तक काव्य रचने वाले किन्हीं दो जैन कवियों के नाम बतायें ।

3. **सत्य/असत्य बताएँ -**

क- स्वयंभू के 'पउम चरिउ' में सीता तेजस्वी नारी के रूपम चित्रित हुई है।

ख- कथाकाव्य का मुख्य चिरत्र या नायक कवि कल्पना की उपज या लोकप्रचलित कथाओं से लिया गया होता है।

ग- 'पाहुड़ दोहा' के रचयिता पुष्पदन्त हैं।

घ- कनकामर मुनि को 'अभिमानमेरू' भी कहा जाता है।

ड- स्वयंभू 'अपभ्रंश के वाल्मीकि' माने जाते हैं।

13.4 परवर्ती हिन्दी साहित्य पर प्रभाव-

इसके पूर्व आप आदिकालीन जैन कवियों के प्रबंधकाव्यों और मुक्तक रचनाओं की विशेषताओं का परिचय प्राप्त कर चुके है। अब आप परवर्ती हिन्दी साहित्य पर भाषा, शिल्प आदि

दृष्टियों से आदिकालीन जैन साहित्य के प्रभाव का अध्ययन करेंगे। काव्य के दो पक्ष होते हैं- वस्तु और रूप। वस्तु से आशय है छन्द, कथानक रूढियाँ, संरचना आदि। आदिकालीन जैन साहित्य ने वस्तु एवं रूप दोनों दृष्टियों से परवर्ती हिन्दी साहित्य को प्रभावति किया है।

13.4.1 काव्यवस्तु सम्बन्धी प्रभाव:

जैन साहित्य के अध्ययन के क्रम में आपने जाना कि प्रबंधकाव्य की रचना करने वाले कवियों ने रामकथा, कृष्णकथा के अतिरिक्त जैन तीर्थकारों तथा अन्य विख्यात चरित्रों को अपनी कविता का विषय बनाया। इनके अलावा उन्होंने ऐतिहासिक या लोकप्रचलित कथाओं के नायकों को लेकर उनके शौर्य, वीरता एवं श्रृंगार का वर्णन किया परवर्ती हिन्दी साहित्य के रासो काव्यों में इस परम्परा का ओर अधिक विकास हुआ।,

पुष्पदन्त के 'णायकुमार चरित' और 'जसहर चरिउ' में नायकों की वीरता और शौर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन प्राप्त होता है । ये चरित्र पूर्णतः ऐतिहासिक नहीं है। यदि इतिहास में कहीं इनका उल्लेख हुआ भी है तो काव्य में इनकी सर्जना कल्पना प्रसूत ही है। ये वस्तुतः कविकल्पना से उत्पन्न चरित्र हैं। हिन्दी साहित्य में जो वीरगाथात्मक रासो ग्रन्थ लिख गए उनमें 'पृथ्वीराज रासो; ' हम्मीर रासो;' 'खुम्मानरासो'; 'परमाल रासो' आदि प्रमुख है। इनमें भी राजाओं की वीरता, वैभव, श्रृंगार आदि का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन ही मिलता है। जैन चरितकाव्यों के नायक लोककथाओं से लिए गए हैं या कविकल्पना की उपज है जबकि रासो काव्यों के नायकों के नाम ऐतिहासिक हैं, लेकिन उनका चरित्राकन कल्पना से रंगा हुआ है। उनमें ऐतिहासिक की सुरक्षा नहीं हो पाई है।भक्तिकालीन रामकाव्य और कृष्णकाव्य की परम्परा के बीज भी हम आदिकालीन जैर काव्य में पा सकते हैं। हालॉकि भक्तिकाल के कवियों ने राम- कृष्ण के चरित्र को भारतीय मुख्य परम्परा के अनुकूल बनाकर प्रस्तुत किया है। भक्तिकाल की मूल चेतना भक्ति थी। इस मूल चेतना के आलोक में भक्त कवियों ने राम और कृष्ण के चरित्र को परब्रह्म के अवतार के रूप में चित्रित किया है और साथ ही उनका मानवीय रूप प्रदर्शित किया है। जबकि जैन काव्य में राम-कृष्ण साधारण पौराणिक पात्रों के रूप में सामने आते हैं।

मुक्तक काव्य रचने वाल कवियों ने धर्म की रूढियों और बाह्याचारों का खंडन कर आत्ज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया थां उन्होंने शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभव को अधिक महत्त्व दिया। इस दृष्टि से यदि भक्तिकालीन सन्त-साहित्य पर विचार करें तो सिद्ध-नाथ कवियों के साथ-साथ इन जैन कवियों का प्रभाव और प्रेरणा भी लक्ष्य की जा सकती है।

13.4.2 काव्यरूप सम्बन्धी प्रभाव:-

काव्यरूप से आशय भाषा, छन्द, कथानक रूढियों एवं काव्यशिल्प से सम्बन्धित अन्य विशेषताओं से है। समय के साथ साहित्य की विषयवस्तु में परिवर्तन आता रहता है, परन्तु काव्य

रूप लम्बे अरसे तक प्रयोग में लाए जाते हैं। आप पढ चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य अपभ्रंश में रचित है। काव्यरूप सम्बन्धी इसकी कई विशेषताएँ हिन्दी साहित्य में अपना ली गई।सर्वप्रथम यदि हम छन्द पर विचार करें तो पाएँगे कि अपभ्रंश से पहले छन्द तुकान्त नहीं होते थे। अपभ्रंश भाषा में पहली बार तुकान्त एवं मात्रिक छन्दों का प्रयोग आरम्भ हुआ। तब से आज तक हिन्दी में मात्रिक छन्दों का प्रचलन बना हुआ है। जैन चरितकाव्यों में पद्धड़िया छन्द अपनाया गया साथ ही बीच-बीच में एकरसता दूर करने के लिए दूसरे छन्दों का भी प्रयोग किया गया। परवर्ती हिन्दी साहित्य के 'रामचरितमानस' और 'पद्मावत' जैसे प्रबंधकाव्यों में भी तुलसी तथा जायसी ने यह पद्धति अपनायी हैं हिन्दी के प्रबंधकाव्यों के लिए चौपाई प्रमुख छन्द बन गयां कवियों ने चौपाइयों के बीच-बीच में दोहा-सोरठा आदि का प्रयोग किया ताकि कथानक की एकरसता समाप्त हो जाए और नवीनता बनी रहे। दोहा अपभ्रंश का विशिष्ट छन्द है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के मतानुसार- ' सच्चाई यही है कि श्लोक संस्कृत का, गाथा प्राकृत का और दोहा अपभ्रंश का अपना छन्द है।'' दोहा मुक्तक काव्य के लिए अन्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल, रीतिकाल और आधुनिक काल तक में मुक्तक रचनाओं के लिए यह हिन्दी के कवियों का प्रिय छन्द रहा है। चौपाई छन्द के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी का मानना है कि इसका संबंध अपभ्रंश के छन्द से है। अपभंश में चउपई नामक छन्द भी मिलता है जिसमें 113-113 मात्राएँ होती हैं, जबकि हिन्दी चौपाई में में प्रत्येक चरण में 16-16 मात्राएँ होती हैं। तुलसी, जायसी जैसे महाकवियों द्वारा प्रयुक्त चौपाई छन्द का मूल भी अपभ्रंश काव्य में ही है। इसी प्रकार हिन्दी का एक बहुप्रयुक्त छन्द 'रोला' है। जैन कवि धनपाल की रचना ' भविस्सत कहा' में इसका प्रयोग मिलता है।प्रत्येक दौर के साहित्य में रूप विधान से जुडी हुई कुछ रूढियों पाई जाती है जिनका कवियों द्वारा निर्वाह किया जाता है। प्रबन्धकाव्य की दृष्टि से मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा और सज्जन प्रशंसा आदि कुछ ऐसी ही रूढियॉ हैं आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों की ये रूढियों तुलसी के 'रामचरित- मानस' में भी प्रयुक्त हुई है। और जायसी ने भी 'पद्मावत' में कथानक-रूढियों का प्रयोग किया है। अधिकांश जैन प्रबन्ध काव्यों में कथा की शुरूआत दो व्यक्तियों के प्रश्नोत्तर के रूप में हुई है। ऐसे ही 'पृथ्वीराज रासो', शुक-शुकी संवाद के रूप में है और 'रामचरितमानस' शिव-पार्वती संवाद के रूप में लिखा गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को काव्यवस्तु एवं काव्यरूप दोनों ही दृष्टियों से प्रेरित और प्रभावित किया है।

अभ्यास प्रश्न-

13. आदिकालीन जैन साहित्य में प्रयुक्त उन छन्दों के नाम लिखें जिनका प्रयोग परवर्ती हिन्दी साहित्य में हुआ।

6. आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यों में प्राप्त कथानक- रूढियों के नाम लिखें जिनका निर्वाह परवर्ती हिन्दी साहित्य में मिलता है।

13.5 सारांश–

इस इकाई को पढने के बाद आप जान चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य के रूप में रचा गयां स्वंयभू, पुष्पदन्त, धनपाल, नेमिनाथ आदि प्रमुख प्रबंधकार कवि हैं जबकि जोइन्दु एवं मुनिराम सिंह प्रमुख मुक्तक रचनाकार हैं। प्रबंधकाव्यों में प्रसिद्ध जैन तीर्थकारों, राम-कृष्ण के चरितों के अलावा लोककथाओं के चरित्रों का वर्णन करते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों और महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। मुक्तक काव्य में धर्म के बाह्याचार, शास्त्रज्ञान आदि का खंडन कर सहज आत्मज्ञान की प्राप्ति पर बल दिया गया है। जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को काव्यवस्तु एवं काव्यरूप, दोनों ही दृष्टियों से प्रभावित किया है।

13.6 शब्दावलीः–

प्रबंधकाव्य	:	प्रबंधकाव्य में पूर्वापर सम्बन्धों में बँधी हुई कथा होती है। कथा होने के कारण कवि द्वारा इसमें घटनाओं और चरित्रों की योजना की जाती है। कवि घटना और चरित्रों के प्रसंग में विभिन्न रसों की अवतारण करता है। प्रबंधकाव्य के दो भेद होते हैं- महाकाव्य और खंडकाव्य।
मुक्तक काव्य	:	जब कवि स्वतंत्र रूप से, बिना किसी कथा या घटना के अपने भावों की अभिव्यक्ति करता है तो वह काव्यरूप मुक्तक कहा जाता है।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क-सत्य ख-असत्य ग-असत्य

2. स्वयंभू- पउमचिरउ, रिट्ठनेमि चरिउ, हरिवंश पुराण

   पुष्पदन्त- महापुराण, णायकुमार चरिउ, जसहर चरिउ

   कनकामर मुनि- करकंडु चरिउ

   धनपाल - भविस्सत कहा

3. जोइन्दु - परमात्म प्रकाश, योगसार

   मुनि राम सिंह- पाहुड़ दोहा

4. क- सत्य ख-सत्य ग-असत्य ध- असत्य ड-सत्य

5. दोहा, रोला, चउपई

6. मंगलाचरण, आत्मनिवेदन, दुर्जन निंदा, सज्जन प्रशंसा, संवाद या प्रश्नोत्तर शैली, बारहमासा वर्णन आदि।

13.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची-

1. 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006

2. 'हिन्दी साहित्यः उद्भव और विकास',हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन , नई दिल्ली, 1999

3. 'हिन्दी साहित्य की भूमिका ',हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010

4. 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग', डॉ.नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971

13.9 निबंधात्मक प्रश्नः

1. प्रमुख जैन प्रबंधकार कवियों की रचनाओं का परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

2. आदिकालीन जैन साहित्य ने परवर्ती हिन्दी साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया? स्पष्ट कीजिए।

इकाई 14:आदिकालीन जैन साहित्यः पाठ एवं परिचय

इकाई का स्वरूप

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्धेश्य
14.3 आदिकालीन जैन साहित्यः पाठगत विशेषताएँ
14.4 आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्य: चयनित पाठ
14.5 आदिकालीन जैन मुक्तककाव्य: चयनित पाठ
14.14 सारांश
14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.8 संदर्भ गन्थ-सूची
14.9 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
14.10 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आप आदिकालीन जैन साहित्य के स्वरूप से परिचित हो चुके हैं। आपने प्रबंधकाव्य और मुक्तककाव्य रचने वाले आदि कालीन कवियों की विशेषताओं को भी जाना। प्रस्तुत इकाई में आदिकालीन जैन साहित्य के चयनित पाठों से आपका परिचय कराया जा

रहा है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जैन साहित्य में व्यक्त विचारों-भावों ओर अभिव्यक्ति की कलात्मकता से परिचित हो सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप-

- आदिकालीन जैन कवियों द्वारा रचित प्रबंधकाव्यों में अभिव्यक्त मानव जीवन की विभिन्न भावदशाओं से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकालीन जैन कवियों की मुक्तक रचनाओं में अभिव्यक्त विचारों को जान सकेंगे और सिद्ध-नाथ कवियों एवं भक्तिकालीन संतकाव्य की प्रवृत्तियों से उसके साम्य की पहचान कर पाएंगे।

14.3 आदिकालीन जैन साहित्यः पाठगत विशेषताएँ

पिछली इकाई में आप पढ़ चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य में दो प्रकार के कवियों की रचनाएँ सम्मिलित हैं- प्रबंधकाव्य की रचना करने वाले कवि और मुक्तक रूप में रचना करने वाले कवि। स्वयंभू, पुष्पदन्त, धनपाल आदि प्रसिद्ध प्रबंधकार कवि हैं और जोइन्दु, मुनि राम सिंह, देवसेन आदि की मुक्तक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। जैन प्रबंधकाव्यों में प्रसिद्ध जैन तीर्थकरों तथा राम-कृष्ण के चरितों के अतिरिक्त प्रसिद्ध लोककथाओं के चरित्रों का वर्णन करते हुए जैन धर्म के सिद्धान्तों और महत्व का प्रतिपादन किया गया है। प्रबन्ध रचने वाले जैन कवियों ने मानव जीवन की भिन्न भावदशाओं को कलात्मक अभिव्यक्त दी है। उनकी रचनाओं में उपयुक्त उपमाओं के जरिए सुघड़ सादृश्य-विधान प्रस्तुत किया गया है।जैन मुक्तककाव्य में धर्म के बाह्याचारों तथा शास्त्रों का ज्ञान आदि का खंडन किया गया है। मुक्तक रचने वाले जैन कवियों ने मुख्यतः नीति-उपदेश, वैराग्य और आत्मज्ञान की बातें की है। यह प्रवृत्ति सिद्धों, नाथों और जैन मुक्तक कवियों में इतनी प्रमुखता से मौजूद है कि यदि कवि का नाम न दिया जाए तो आप देखेंगे कि इन सबकी कविता की विषयवस्तु लगभग समान है।

इस इकाई के अगले दा खंडों में आपका परिचय जैन कवियों द्वार रचित प्रबंधकाव्यों और मुक्तक काव्य के चयनित पाठों से कराया जा रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1 **सत्य/असत्य बताएं**

(क) प्रबंधकाव्य के रचियता जैन कवियों ने मुख्यतः नीति, वैराग्य तथा आत्मज्ञान की चर्चा की है।

(ख) आदिकालीन जैन मुक्तक काव्य में पौराणिक और लोक-विख्यात चरित्रों की कथा कही गई है।

(ग) सिद्ध-नाथ काव्य और मुक्तक काव्य में प्रवृत्तिगत समानता मिलती है।

14.4 आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्यः चयनित पाठ

क- पुक्क विमाणे चडिय अणुरायें, परिमिय विज्जाहर संधाएँ

कोशल-णयरि पराइय जावहिं, दिणमणि गउ अत्थ-वणहोतवहिं

जत्थहो पिययमेण णिव्वासिय, तव उववणहो मज्झे आवासिय

कहवि विहांणा भाण णहे उग्गउ, अहि-मुहु सज्जण-लोउ समागउ

दिण्णइ तरइ मंगलु घोसिउ, पट्टणु णिश्वसेसु परिओसउ

सीय पइट्ठ णिवट्ठ वरासणे, सासण-देवए जं जिण-सासणे

परमेसरि पढम-समागमे भति णिहालिय हलहरेण।

सिय-पक्खहो दिवसे हिल्लए चंद लेह सायरेण।। (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- पुक्क विमाणे - पुष्पक विमान, अणुरायें - अनुराग, विज्जाहर- विधाधर, णयरि-नगरी, दिणमणि -सूर्य, अत्थ-अस्त, उववणहो- उपवन में, विहांण- सुबर, हलहरेण-राम

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियॉ 'अपभ्रंश भाषा के वाल्मीकि' कहे जाने वाले कवि स्वयंभू के प्रबंधकाव्य 'पउमचरिउ' से उद्धत है। इन पंक्तियों में महाकवि स्वयंभू राम द्वारा लंका विजय के पश्चात् पुष्पक विमान पर चढ़कर सीता के अयोध्या लौटने का वर्णन कर रहे हैं। सीता के लंका से वापस आने पर एक ओर तो अयाध्या का भव्य वातावरण है और दूसरी ओर सीता के चरित्र पर शंका के कारण उनके प्रति उपेक्षिता-सा व्यवहार हो रहा हैं इस विरोध के द्वारा स्वयंभू सम्पूर्ण प्रसंग को मार्मिक और प्रभावशाली बना देते हैं।

स्वयंभू लिखते हैं कि पुष्पक विमान पर चढ़कर सीता अत्यन्त अनुराग के साथ अयोध्या आई। विधाधरों का समूह उन्हें घेरे हुए था। वे जब कोशल नगरी पहुँचीं तो सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहे थे। बड़े अरमानों और अपेक्षाओं के साथ राजधानी लौटी सीता के साथ उपेक्षिता-सा व्यवहार होता है। उन्हें राजमहल में नहीं रखा जाता । राजा राम तो अपने राजमहल में रहने के लिए चले जाते हैं, लेकिन सीता को राजमहल के उपवन में ठहरा दिया जाता है। लंकापति रावण के यहाँ से उनका

निर्वासन तो पूरा हो गया, किन्तु अब वे स्वयं अपने पति द्वारा निर्वासित कर दी जाती हैं। अन्ततः सुबह होती है, पूर्व दिशा में सूर्य उदित होते हैं। 'सज्जन लोग' अर्थात् नगर के भद्रजन वहॉ जुटने शुरू होते हैं। सूर्योदय पर मंगलघोष करने वाले तुर्य बजाए जाते हैं। लेकिन ये तूर्य अभी मंगलघोष करने के लिए नहीं, बल्कि सीता की अग्निपरीक्षा की घोषणा करने के लिए बजाए जाते हैं। प्रातःकाल की ऐसी बेला में सीता वहॉ प्रवेश करती हैं।

स्वयंभू स्थिरचित्र सीता की गरिमामय छवि का चित्रण करने के लिए सादृश्य-विधान का प्रयोग करते हैं। वे कहते हैं बैठी-हुई सीता अग्नि की कांति से ऐसी प्रतीत हो रही हैं माने जिन शासन पर शासन देवता हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में सीता पहली बार राम द्वारा देखी जाती हैं। दोनों का परस्पर देखना ऐसा था जैसे श्वेत पक्ष (शुक्ल पक्ष) के प्रथम दिन सागर चंद्रकिरण की ओर देखताहै। इस प्रकार स्वयंभू परिवेश की मार्मिकता और सीता की उपेक्षित छवि को साकार कर देते हैं।

ख- कंतहि तिणय कंति पेक्खेप्पिणु, पभणई पोम णाहु बिहसेप्पिणु

जइ वि कुलग्गयाउ णिरवज्जउ, महिलउ होंति असुद्ध णिलज्जउ

दस-दाविय कडक्ख विक्खेवउ, कुडिल-मइउ वड्ढिअ-अवलेवउ

बाहिर-धिट्ठउ गुण-परिहणीउ, णउ गणंति णिय कुल मइलंतउ

तिहुअणे अयस-पडहु महलंतउ, अंगु समोडेवि धिद्धिक्कार हो

वयण णिएति केम भरहो। - (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- कंत-पति, पेक्खेप्पिणु-देखना, णाहु-नाथ, बिहसेप्पिणु- विहॅसना, कुलग्गयाउ-कुलको लांछित करना, णिलज्जउ-निर्लल्जता, विक्खेउ- विष, मइलंतउ- मलिन करना, तिहुअणे- त्रिभुवन या तीनों लोकों में, भत्तारहो - पति

अर्थ- उपरोक्त पंक्तियों में स्वयंभू ने राम के चरित्र के माध्यम से सामंती समाज की पुरूष नैतिकता को दर्शाते हुए स्त्री-पुरूष असमानता को रेखांकित किया है। अग्निपरीक्षा से पूर्व राम सीता की ओर देखकर विहॅसते हैं, उन पर लांछन लगाते हैं ओर धिक्कारपूर्ण बातें कहते हैं। स्वयंभू की इन पंक्तियों में राम सीता की शोभा देखते हुए व्यंग्य-भरी मुस्कान के साथ धिक्कारपूर्ण स्वर में कहते हैं कि जो स्त्री कुल से बाहर रह जाती है या कुल की वर्जनाओं से बाहर हो जाती है वह स्त्री अशुद्ध हो जाती है, निर्लज्ज हो जाती है। ऐसी स्त्रियॉ मलिनमति होती हैं, कुल या परिवार से बाहर रहने पर वे विष से भर जाती हैं। बहिर्घृष्टा होने पर वे अपने कुल को तीनों लोकों में अपयश देती हैं। भला ऐसी स्त्री को कौन पति अपने अंगों से लगा सकता हैं, कौन ऐसा पति होगा जो ऐसी पत्नी का मुँह भी देखे ?

स्वयंभू ने इस प्रसंग में सामंती समाज में स्त्री-पुरूष संबंधी विभेद एवं असमान नैतिक आग्रहों को राम-सीता के माध्यम से उद्धरित कर दिया है।

ग- सीय ण भीय सइण-गव्वे

बलेवि पबोल्लिय गग्गर सद्दें

पुरिस णिहीण होंति गुणवत वि

तियहे ण पाज्जंति मरंतवि

खडु लक्कडु सलिल वहंतिहे पउराणियहे कुलग्गयहे।

रयणायरू खार इ देंतउ तो विण थक्कई ण पण्इहे।। (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ- सीय-सीता, भीय-डरना, सइण-संयत, गुणवत-गुणवान, णिहीण-विहीन, तियेह-पत्नी, पज्जंति-विश्वास, रयणायरू-रत्नाकर (समुद्र), खार-क्षार

अर्थ- स्वयंभू ने इन पंक्तियों के माध्यम से व्यथित-हृदय सीता का गरिमामय चरित्र उपस्थित किया है। राम के धिक्कार-भरे वचन को सुनकर भी सीता संयत बनी रहीं। तनिक भी भयभीत हुए बिना, सतीत्व के गर्व से सिर ऊँचा करके सीता ने कहा कि पुरूष गुणवान होकर भी विहीन होते हैं। स्त्री के प्रति सद्भाव का अभाव होना विहीन होना ही है। सीता कहती हैं कि पुरूष मरती हुई स्त्री पर भी विश्वास नहीं करते। वे उस समुद्र की भांति होते हैं जो क्षर देकर भी नदियों से नहीं विरमता।

घ- णर णारिहिं एवड्डउ अंतरू

मरणे वि वेल्लि ण मेल्लइ तरूवरू

एह पइ कवणा बोल्ल पाररंभिय

सइ-वडाय मइ अजु समुढिभय

तुहु पेक्खंतउ अच्छु विसत्थउ

डहउ जलणु जय डहिवि समुत्थउ। - (स्वयंभू- 'पउमचरिउ')

शब्दार्थ - वेल्लि-लता, तरूवरू-पेड़ डहउ- जलाना

अर्थ- अपने प्रति राम के अविश्वास और फलतः अग्निपरीक्षा के प्रसंग में ही सीता का आक्रोश यहॉ व्यक्त हो रहा है। वे धैर्यपूर्वक राम के आरोप के प्रत्युत्तर में कह रही हैं स्त्री और पुरूष में यह

अन्तर है कि जिस प्रकार मरने या सूख जाने के बाद भी लता पेड़ का साथ नहीं छोड़ती, उसी प्रकार विपरीत परिस्थितियों में भी स्त्री कभी पुरूष का साथ नहीं छोड़ती। स्वयं सीता ने राम के जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में सदा उनका साथ दिया, लेकिन जब स्थितियॉ अनुकूल हो गईं तो राम ने सीता के चरित्र पर अविश्वास करके उनके साथ उचित व्यवहार नहीं किया ।

स्वयंभू लिखते हैं कि इस प्रकार के करूण वचन सीता ने उस समूह के सम्मुख कहे। सीता ने राम से आगे कहा कि आप विश्वस्त होकर देखते रहें। यदि मेरा मन विशुद्ध है तो आग मुझे जला नहीं पाएगी।

ड- हा हा कइँ वु पइँ हलहर, दसहर-वंश-दीव जग सुंदर।

पइँ विणु को पल्लके सुवेसइ, पइँ विणु को अत्थाणे वईसइ।

पइँ विणु को हय-गयहुँ चडेसइ, पइँ विणु को झिंदुएण रमेसइ।

पइँ विणु रायलच्छि को माणई, पइँ विणु को तम्बोलु समाणइ।

शब्दार्थ- दसहर-दशरथ, दी-दीपक, पल्लके- पलंग, सुवेसइ-सोना, हय-गयहूँ- हाथी-घोड़े, रायलच्छि- राजलक्ष्मी, तम्बोलु- पान

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियों में महाकवि स्वयंभू ने राम-वनगमन के प्रसंग में माता कौशल्या के पुत्र-वियोग की व्यथा का सजीव चित्र उपस्थित किया है। इन पंक्तियों में माता के हृदय में व्याप्त पुत्र-प्रेम की मार्मिक अभिव्यंजना हुई है।

राम के वनगमन के समय कौशल्या के हृदय में भावों का झंझावात उठ रहा है। वे सोचती हैं कि राजा दशरथ के वंश को प्रकाशित करने वाले दीपक के समान, जगत् विख्यात राज जब वन के लिए प्रस्थान कर जाएँगे तो उनका पलंग सूना हो जाएगा! उस शय्या का कौन सुशाभित करेगा, कौन बैठेगा? राम के न रहने पर कौन उनके हाथी-घोडों की सवारी करेगा । राजलक्ष्मी राम के बिना वैभवहीन हो जाएगी। उनकी जगह पान का स्वाद कौन लेगा ? यहाँ वियोग की कल्पना-मात्र से कौशल्या विचलित हो जाती हैं। राम के दैनिक उपभोग से जुडी हुई वस्तुओं के माध्यम से उनकी विह्वलता प्रकट होती है। स्वयंभू ने इन पंक्तियों में पुत्र-वियोग से कातर माता का नितांत स्वाभाविक और प्रामाणिक विलाप-चित्र खींचा है।

च- हा भायर दुण्णिद्दए मुत्रउ

सिज्जे मुएवि कि महियले सुउ

किं अवहेरि करेवि थिउ, सीसे चडावियं चलण तुम्हार।

अच्छामि सुट्ठम्माहियउ, हिअउ फुट्ट आलिंगी भडारा।।

शब्दार्थ- भायर-भाई, दुण्णिद्दए-दुर्निद्रा, सिज्जे-सोना, महियले-भूमि पर, अवहेरि-अवहेलना, चलण-चरण, सुट्ठम्माहियउ-वीर, भट्टारक, हिअउ -हृदय

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियों में स्वयंभू रावण की मृत्यु पर उसके भाई विभीषण के हृदय की वेदना को वाणी दे रहे हैं।

रणभूमि में रावण की मृत देह को देखकर विभीषण विलाप करता हुआ कहता है- हे भाई! यह दुर्तिद्रा त्यागकर उठ खड़े हो जाओ। तुम आज अपनी शय्या छोड़कर भूमि पर पड़े हो। मेरे कहने से भी खड़े नहीं होते। इस प्रकार में अवहेलना मत करो। मैं अपना सिर तुम्हारे चरणों पर धरकर तुमसे विनती करता हूँ। हे परमभट्टारक! हे परमवीर ! तुम उठ खड़े हो, तुम्हारे आलिंगन के लिए मेरा हृदय फटा जा रहा है। स्वयंभू ने इन पंक्तियों में विभीषण के चरित्र को अपनी सहानुभूति देकर उस उज्जवल बना दिया है। वह विभीषण, जिसने अपने भाई रावण का साथ नहीं दिया था, अब रावण की मृत्यु के बाद ग्लानि और क्षोम से भरा हुआ है। यह रक्त-सम्बन्धों के प्रति सहज लगाव का ही सूचक है।

छ- तुहु पडिउसि ण, पडिउ पुरंदरू

मउडु ण भग्गु, भग्गु गिरि कंदरू

दिठि ण णट्ण, णट्ठ लंकाउरि

वयण ण णट्ण, णट्ठ मंदोयरि

हारू ण णट्ठ, तुट्ठ तारायणु

हियय न भिण्णु, भिण्णु गयणांगणु

आउ ण खुट्ट, खुट्ट रयणायरू

जीउ ण गउ, गउ आसा पोट्टल

तुहु ण सु, सुउ महिमंडल।

शब्दार्थ:- पडिउसि- पड़ा हुआ, पुरंदरू- इन्द्र, मउडु- मुकुट, भग्गु- भग्न, दिठि- दृष्टि या आँख, णट्ठ-नष्ट, वयण-वचन, आउ-आयु, महिमंडल- भूमंडल

अर्थ- महाकवि स्वयंभू की इन पंक्तियों में उस समय का चित्रण हुआ है जब राम के हाथों पराजित रावण का क्षत-विक्षत शरीर धराशायी है। उसका मुकुट एक और लुढ़का पड़ा है, गले का हार टूटकर

बिखर गया है, उसके मुँह से शब्द नहीं निकल रहे हैं, आँखें बंद हो चुकी हैं। रावण की ऐसी मृत्यु देखकर विभीषण के हृदय में उठ रही वेदना को कवि स्वर देते हैं।

युद्ध में धराशायी अपने भाई रावण की दशा को देखने के बाद विभीषण के व्यथित हृदय में भावों का द्वंद्व चलता है। इसी मनः स्थिति में वह सोचता है कि यह मेरा भाई रावण नहीं, बल्कि साक्षात् पुरंदर आर्थात् इन्द्र है। यह रावण का मुकुट टूटकर नही गिरा पड़ा है, बल्कि यह तो मानो गिरिकंदर भग्न हुआ है। रावण की दृष्टि नहीं बंद हुई है, अपितु लंकापुरी नष्ट हुई है। उसके वचन या वाणी नष्ट नहीं हुई है, अपितु इनका आस्वादन करने वाली मंदोदरी नष्ट हुई है। यह जो रावण के हृदयस्थल पर लटकने वाला मोतियों का हार उसकी मृत्यु के पश्चात् टूटकर बिखर गया है, यह मानों गगनमंडल के तारे बिखरे पड़े हैं यह बिंधा हुआ विशाल हृदय रावण का नहीं है, यह तो मानों विश्वव्यापी आकाश बिंध कर गिरा पड़ा है।

विभीषण कहता है कि हे भाई! तुम्हारी आयु समाप्त नहीं हुई है, बल्कि कभी न घटने वाला रत्नाकर (समुद्र) ही समाप्त हो गया है। तुम्हारे मृत्युलोक जाने से एक-दो आशाएँ नहीं, आशाओं की पोटली ही रिक्त हो गई है, अर्थात् अनगिनत आशाएँ एक तुम्हारे न रहने से बुझ गई हैं। धरती पर सोए यह तुम नहीं, बल्कि समस्त भूमंडल है। इस प्रसंग में स्वयंभू ने अलंकारों के सर्वथा नवीन प्रयोग से रावण की मृत्यु पर व्यथित विभीषण के हृदय की दारूण दशा का मार्मिक चित्रण किया है।

ज- धुलि धूसरेण वर-मुक्क सरेण तिणा मुरारिणा

कीला-रस कसेण, गोवालय-गोवी हियय-हारिणा

रंगतेण रमत रमंते, मंथउ धरिउ भमंत अणंते

मंदिरउ तोडिवि आ वट्टिउँ, अद्ध-विरोलिउ दहिउँ पलोट्टिउँ

कावि गोवि गोविंदहु लग्गी, एण महारी मंथणि भग्गी

एयहि मोल्लु देउ आलिंगणु, णं तो मा मेल्लहु मे प्रंगणु

कहिवि गोविहि पंडरू चेउऊँ, हरि-तणु तेएँ जायऊँ कालऊँ

मढ जलेण काईं पक्खालइ। - (पुष्पदन्त- 'महापुराण')

शब्दार्थः- मुरारिणा- श्रीकृष्ण, कीला-रस - क्रीडा़ रस, गोवालय- गोपालक, गोवी-गोपी, मंथउ- मथानी, मंदिरउ-मटकी, अद्ध-विरोलिउ- आधा बिलोया हुआ, पलोट्टिउँ पलट देना, मोल्लु - मूल्य, चेउऊँ, तणु- तन, पक्खालइ- पखारना, धोना

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियाँ जैन कवि पुष्पदन्त के 'महापुराण' नाम प्रबंधकाव्य से उद्धत है। स्वयंभू ने अपने काव्य में रामकथा का वर्णन किया है, जबकि पुष्पदन्त ने अपने काव्य में कृष्णलीला का भी वर्णन किया है। उपर्युक्त पंक्तियों में कृष्ण की बाल-लीली का वर्णन किया गया है।

कृष्ण-चरित्र में नछखट बालकृष्ण की लीलाओं ने कवियों को सदा से आकृष्ट किया है। सूरदास के कृष्ण की भांति पुष्पदन्त के कृष्ण भी नटखट हैं। वे लिखते हैं कि धूल-धूसरित श्रीकृष्ण कई प्रकार की क्रीड़ाओं से रस उत्पन्न करने वाले है। वे गोपालकों और गोपियों के हृदय को हर लेते हैं। अपनी लीलाओं से उन्होंने गोपालकों और गोपियों का मन जीत लिया है। बाल-कृष्ण आँगन में दौड़ते फिरते हैं, कभी मथानी लेकर दौड़ जाते हैं तो कभी दही की मटकी तोड़ देते हैं। ऐसा ही कभी वे आधा बिलोया हुआ दही लुढ़का देते हैं। जब गोपियाँ उन्हें पकड़ लेती हैं तो टूटी हुई मथानी और गिराए हुए दूध-दही का मूल्य उनसे उनके आलिंगन के रूप में माँगती हैं। श्याम वर्ण कृष्ण जब उनका आलिंगन करते हैं तो उनकी पीली चोली कृष्ण के तन से लगकर काली पड़ जाती है। पुष्पदन्त कहते हैं कि भोली गापियाँ अपनी चोली के श्यामपन को दूर करने के लिए उस जल से धोती हैं।

परम्परा से ही श्रीकृष्ण का बाल रूप अपने नटखटपन और लीलाओं के लिए कवियों में लोकप्रिय रहा है। पुष्पदन्त ने भी इसी रूप में श्रीकृष्ण का चरित्रांकन किया है।

झ- बहु सिक्खहिं सहियउ डंम धारि, धरि-धरि हिडंइ हुँकार कारि

सिर टोप्पी दिण्ण रवण्ण-वण्ण, सा झंपवि संठिय दोण्णि कण

अंगुल ढु-तीस परिमाणु दंडु, हत्थें उफ्फालिवि गहइ चंडु

गलि जोगवट्टु सज्जिउ विचिन्तु, पाउडिय जम्मु पइदिण्णु दन्तु

तड-तड-तड तड-तड तडिय सिंगु, सिंगग्गु छेदि किउतेण चंगु।

शब्दार्थ:- सिक्खहिं- शिष्यों, डंभधारि- दंभी, रवण्ण -वण्ण- अनके रंगों की, उफ्फालिवि-उछालता हुआ, दु-तीस बत्तीस, सिंगू-सींग का बना बाजा

अर्थ- उपर्युक्त पंक्तियाँ पुष्पदन्त के चरितकाव्य 'जसहरचरिउ' से उद्धत हैं। 'चसहरचरिउ' में कापालिक मत पर जैन धर्म की विजय प्रतिपादित की गर्ह है। इन पंक्तियों में पुष्पदन्त ने एक कापालिक का सजीव चित्र खींचा है।

कापालिक के हाव-भाव और वेश-भूषा का वर्णन करते हुए पुष्पदन्त लिखते हैं कि वह कापालिक अपने बहुत से शिष्यों के साथ दंभपूर्वक भ्रमण कर रहा था। वह प्रत्येक घर में जाने के बाद जोर की हुँकार भरता था। उसने दोनों कानों को ढँक देने वाली रंग-बिरंगी टोपी पहनी हुई थी। उसके हाथ में बत्तीस अंगुल लम्बा डंडा था, जिसे उछालते हुए वह चल रहा था। वह गले में विचित्र

प्रकार के योगपट्ट धारण किए हुए था। वह गली-गली में दंभपूर्ण ढंग से चंग खड़काते हुए और सिंगा बजाते हुए घूम रहा था।

ञ- गयं णिफफलं ताम सत्वं विणज्जं।

हुवं अम्ह गोतम्मि-लज्जा-वणिज्जं।।

ण ज ण विण मि ण गेहं।

ण धम्मं ण कम्मं ण जियं ण देहं।।

ण पु कलण इट्ठं ण दिट्ठं।

गयं गयउरे दूर-देसे पइट्ठं।। (धनपाल- 'भविस्सत कहा')

शब्दार्थ- णिफफलं- निष्फल, वणिज्जं-व्यापार, ज-यश, वि-धन, ण इट्ठं ण दिट्णं- न यहाँ का न वहाँ का

अर्थ- प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि धनपाल द्वारा रचित कथाकाव्य 'भविस्सत कहा' से उद्धत हैं। एक लोकप्रचलित प्रेमकथा पर आधारित अपनी इस रचना में धनपाल ने एक वणिकपुत्र भविष्य की भाग्यगाथा का वर्णन किया है। भविष्य बार-बार अपने सौतेले भाई द्वारा छला जाता है और अन्ततः जैन धर्म को स्वीकार करके सुखी होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों में धनपाल वणिकपुत्र भविष्य के तिलकद्वाप में अकेले रहने का वर्णन करते हैं। भविष्य का सौतेला भाई बंधुद जब उसे तिलकद्वीप में अकेला छोड़कर चला जाता हे तो आहत भविष्यद अपने जीवन के विषय में सोचने लगता है। वही सोचता हे कि उसने कितने हौसले और आशाओं के साथ घर छोडा़ था, पर अब उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर चुका है। कवि ने यहाँ उसकी इसी मन: स्थिति को व्यक्त किया है। भविष्य सोचता है कि मैं व्यापार के उद्धेश्य से घर से निकला था, पर अन्त में सब निष्फल ही रहा। मैं व्यापार कर पाने में तो असफल रहा ही, साथ ही न यश मिला और न धन की प्राप्ति हो सकी । न किसी को मित्र बनाया और न ही कोई घर बना पाया, न धर्म की प्राप्ति हुई और न ही कोई काम किया। मेरे शरीर और प्राण भी थक चुके हैं। न पुत्र प्राप्त कर पाया। निष्फल भटकता हुआ मैं न यहाँ का रहा न वहाँ का। इस दशा में मैं घर से इतनी दूर निकल आया हूँ कि यहाँ कोई भी नहीं रहता । मैं ऐसे प्रदेश में प्रवेश कर चुका हूँ जो पूरी तरह निर्जन है। धनपाल ने इस प्रकार चिंतित भविष्य के आत्मालाप का प्रामाणिक चित्रण किया है।

ट- सुरहि-गंध-परिमलं पसुणएहि फंसए

सो ण तित्थु जो करेण गिण्हिउण बासए।

पिक्स सालि-धण्णयं पणट्ठंयम्मि ताणए

सो ण तित्थु जो धरम्मि लेवि तं पराणए।

सर वरम्मि पंकयाइं भ मर-भमर-कदिरे

सो ण तित्थु जो खुडेवि णेइ ताइं मंदिरें

हत्थ-गिज्झ वर-भलाइ विंभएण पिक्खए

केण-कारणेण को वि तोडिउं ण भक्खए। (धनपाल- 'भविस्सत कहा')

शब्दार्थ- सुरहि गंध- सुरभि गंध, पसुण-प्रसून (फूल), करेण- हाथ, गिण्हिउण- सूँघने वाला, सालि धण्णयं- पका हुए धान, पणट्ठंयम्मि - बिखरना, पंकयाइं- कमल, खुडेवि-तोड़ने वाला, पिक्खए-पका हुआ, भक्खए-खाने वाला

अर्थ- धनपाल ने इन पंक्तियों में वणिकपुत्र भविष्य के तिलकद्वीप पहुँचने के बाद की स्थिति को वर्णित किया है। यह एक ऐसी जगह है जहाँ सुंदर प्राकृतिक वैभव है; फल-फूल, धन-धान्य सब कुछ है लेकिन यह नगरी जनविहीन है।

ऐसे नगर में पहुँचने के बाद भविष्य सोचता है कि यह कैसी विचित्र जगह है जहाँ के फूल सुगंध से भरे स्पर्श कर रहे हैं, लेकिन उन्हें हाथ में लेकर सूँघने वाला कोई नहीं है। खेतों में धान की फसल पकी हई है, उसके दाने बिखर रहे हैं, लेकिन उन्हें घर ले जाकर उनका उपभोग करने वाला कोई नहीं है। सरोवर कमलों से भरे पड़े हैं, उन पर भौंरे मँडरा रहें हैं लेकिन उन्हें तोड़कर मंदिर में चढा़ने वाला कोई नहीं है। फलों के भार से वृक्ष स्वयं ही नीचे झुक आए हैं, किन्तु आश्चर्य कि उन्हें तोड़कर खाने वाला कोई नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

1. सुमेलित करें-

स्वयंभू-	भविस्सत कहा
पुष्पदन्त-	पउमचरिउ
धनपाल-	महापुराण
पुष्पदन्तु-	जसहरचरिउ

2. सत्य/असत्य बताएँ-

क- 'पउमचरिउ' में वणिकपुत्र की कथा कही गई है।

ख- 'महापुराण' में कृष्णलीला का वर्णन भी मिलता है।

ग- 'जसहरचरिउ' में कापालिक मत पर जैन धर्म की विजय प्रतिपादित की गई है।

ध- 'भविस्सत कहा' में रामकथा वर्णित है।

14.5 आदिकालीन जैन मुक्तककाव्यः चयनित पाठ

क- जोइन्दु- 'परमात्म प्रकाश' और 'योगसार'

जो जाया झाणगिग्गयए, कम्म कलंक डहेवि।

णिच्च-णिरंजणा-णाणमय, ते परमप्प णवेवि।।

शब्दार्थ- झाणग्गियए- ध्यान की अग्नि, णिच्च- नित्य, णाणमय- ज्ञानमय, परमप्प- परमात्मा

अर्थ - जोइन्दु कहते हैं कि जो ध्यानग्नि से अपने कर्मों के कलंक को जलाकर नित्य, निरंजन, और ज्ञानमय हो गए हैं उन परमात्मा को मैं नमन करता हूँ।

रूवि पयंगा सद्दि मय, गय फांसहिं णांसति।

अलि-उल गंधहि मच्छ रसि, किमि अणुराउ करंति।।

शब्दार्थ- रूवि- रूप, पयंगा- पतंगा, सद्दि- शब्द, अलि- भौंरा, अणुराउ- अनुराग

अर्थ- कवि जोइन्दु कहते हैं कि रूप के मोह में पतंगे, शब्द के मोह में मृग, सुगंध के मोह में भौंरों का दल और रसना के मोह में पड़कर मछली नष्ट हो जाती हैं। यह जानकर भी कि लोभ नाश का कारण है, लोग विषयों के प्रति अनुराग बनाए रखते हैं। कवि ने यहाँ विषयासक्ति का निषेध किया है।

पंचहँ णायुकु वसिकरहु, जेंण होंति वसि अण्ण।

मूल विणट्ठइ तरूवरहँ, अवसइँ सुक्कहिं पण्णु।।

शब्दार्थ- णायुकु- नायक, स्वामी; अण्ण-अन्य, विणट्ठइ- विनाश सुक्कहिं- सूखना, पण्णु- पत्ते

अर्थ- जोइन्दु कहते हैं कि मन को वश में करना ही सर्वाधिक आवश्यक है। उनके अनुसार पाँचों इंन्द्रियों के नायक या स्वामी मन को वश में करना चाहिए, फिर तो इन्द्रियाँ स्वयं ही वश में हो जाएँगी। वे एक उदाहरण के द्वारा अपनी बात समझाते हैं कि किसी पेड़ की जड़ काट देने पर उसके पत्ते अपने-आप सूख जाते हैं। जड़ काट देने के बाद प्रत्येक पत्ते को काटने का व्यथ्र परिश्रम नहीं करता पड़ता। उसी प्रकार अलग-अलग इद्रियों को नहीं, बल्कि मन को वश में करना चाहिए।

संता विसय जु परिहरइ, बलि किज्जउँ हउँ तासु।

सो दइवेण कि मुँडियउ सीसु खडिल्लउ जासु।।

शब्दार्थ- परिहरइ- छोड़ना, दइवेण- भाग्य से

अर्थ- जोइन्दु कहते हैं कि जो विद्यमान विषयों को छोड़ देता है उसकी मैं बलि जाता हूँ, अर्थात् उसके प्रति श्रद्धावनत हूँ। लेकिन जिसने सिर मुँडा रखा है वह तो भाग्य से ही मुँडा हुआ है। वह सच्चे अर्थों में संन्यासी नहीं कहा जा सकता । जोइन्दु का आश्य यह है कि विषयों को छोड़ देने वाला व्यक्ति की वास्तव में संन्यासी है, न कि धर्म के बाह्याचार-मात्र मानने वाला व्यक्ति। मुंडित व्यक्ति कहने को ही संन्यासी है, उसे धर्म के मूल तत्व का भी ज्ञान को आवश्यक नहीं।

जेहउ मण विसयहँ रमइ, तिमु जइ अप्प मुणेइ।
जोइउ भणइ हो जोइयहु लहु णिब्बाणु लहेई।।

शब्दार्थ- अप्प- आत्मा, मुणेइ- मनन करना, णिब्बाणु- निर्वाण

अर्थ- इन पंक्तियों में जोइन्दु योगियों से कहते हैं कि मन जिस प्रकार विषयों में रमता है उसी प्रकार यदि आत्मा का मनन करने में रम जाए तो जीव निर्वाण को प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार वे विषयों के प्रति आसक्ति को त्यागकर आत्मज्ञान की प्राप्ति पर बल देते हैं।

सो सिउ-संकरू विण्हु सो, सो रूद्दवि से बुद्ध।
सो जिणु ईसरू बंभु सो, सो अणंतु सो सिद्ध।।

शब्दार्थ- सिउ-संकरू- शिवशंकर, विण्हु- विष्णु, रूद्दवि- रूद्र, बंभु- ब्रह्मा

अर्थ- जोइन्दु ने इन पंक्तियों में परमतत्व की सर्वव्यापकता को दर्शाया है। वे कहते हैं कि वही शिवशंकर है, वही विष्णु, वही रूद्र और वही बुद्ध हैं वही जिन देवता, वही ब्रह्मा, वही अनंत और वही सिद्ध हैं कहने का आश्य यह है कि परमतत्व को किसी भी रूप में जाना जाय उससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह एक ही तत्व है जो भिन्न-भिन्न नामों से जाना जाता है। आवश्यकता है उसे पहचानने, जानने-समझने की।

ख- मुनि रामसिंह-'पाहुड़ दोहा'

बहुयइँ पढियइँ मूढ़, पर तालु सुक्कई जेण।
एक्कुजि अक्खरू तं पढहु, सिवपुरी गम्मई जेण।।

शब्दार्थ- मूढ़- मूर्ख, सुक्कई- सूखना, गम्मई- पहुँचना

अर्थ- जैन कवि मुनि रामसिंह ने इन पंक्तियों में कोरे अक्षरज्ञान का विरोध किया है। वे शास्त्रज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को श्रेष्ठ मानते हैं। अक्षरज्ञान के प्रेमियों को संबोधित करते हुए वे व्यंग्यसिक्त स्वर में कहते हैं कि मूर्ख, तूने बहुत पढ़ा है और इसी कारण तुम्हारा तालू सूखता है। इतनी अधिक पढ़ाई करने से अच्छा है कि वह एक मात्र अक्षर पढ़ो, जिससे शिवपुरी पहुँचा जा सकता है।

हऊँ सुगुणी पिउ णिग्गुणहु, णिल्लक्खणु णीसंगु।
एकहि अंगि बसंतयहुँ, मिलिउ ण अंगहिं अंगु।।

शब्दार्थ- सुगुणी- सगुण, णिग्गुणहु- निर्गुण

अर्थ- इन पंक्तियों में मुनि राम सिंह ने सगुण-निगुण की भ्रांति पर विचार किया है। वे कहते हैं कि मैं सगुणी हूँ और प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण तथा निसंग। एक ही अंग में बसकर भी अंग से अंग नही मिल पाया वस्तुतः सगुण और निर्गुण एक-दूसरे के विरोधी नहीं, ये तो मात्र अज्ञानवश विरोधी दिखते हैं। निर्गुण अपनी अभिव्यक्ति के लिए सगुण का सहारा लेता है और सगुण के भीतर ही निर्गुण समाया हुआ है।

मूलु छाँड़ि जो डाल चडि, कहँ तह जोयाभायसि।
चीरूणु वुणणहँ जाइ बढ़, विणु उट्टियइँ कपासि।।

शब्दार्थ- जोयाभायसि- योगाभ्यास, चीरूणु- कपडा़, वुणणहं- बुनना, उट्टियइँ- ओटना

अर्थ- मुनिराम सिंह कहते हैं कि जो मूल यानि जड़ को छोड़कर सीधे डाल पर चढ़ने का प्रयास करता है उसके लिए योगाभ्यास कहाँ ? वे तर्क देते हैं कि भला कपास को ओटे बिना भी कहीं कपड़ा बुना जाता है। वस्तुतः उनकी सलाह यह है कि योगाभ्यास में क्रम बद्ध ढ़ग से ही आगे बढ़ना चाहिए ओर धैर्य से काम लेना चाहिए।

छह-दंसण धंधइ पाडिय, मणहँ ण फिट्टिव भँति।
एक्कु देउ छह भेउ किउ, तेण ण मोक्खहं जंति।।

शब्दार्थ- दंसण- दर्शन, भँति- भ्रांति, देउ- देवता, भेउ-भेद, मोक्खहं - मोक्ष

अर्थ- मुनि राम सिंह की इन पंक्तियों में शास्त्रों को विरोध है। वे कहते हैं कि छह दर्शनों के धंधे में पड़कर भी मन की भ्रांति नहीं मिटी। एक देवता के छह भेद कर दिए, इसलिए मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकी। यह वास्तव में भारतीय परम्परा के 'पड्दर्शन' का विरोध है।

ग- देवसेन- 'सावयधम्म दोहा'

काइँ बहुत्तइँ जंपिअइँ, जं अप्पणु पडिकूलु।

काइँ नि परहु ण तं करहि, एह जु धम्महु मूलु।।

अर्थ- जैन कवि देवसेन कहते हैं कि बहुत कल्पना करने से क्या, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति कभी नहीं करना चाहिए। यही धर्म का मूल है।

सत्थसएण वियाणियहँ धम्मु ण चढइ मणे वि।
दिणयर सउ जइ उग्गमइ, घूयडु अंधड़ तोवि।।

अर्थ- देवसेन कहते हैं कि विपरीत ज्ञान वाले व्यक्ति का मन सैकड़ों शास्त्रों को जान लेने के बाद भी धर्म की राह पर नहीं चल सकता। वे उदाहरण देते हैं कि यदि सौ सूर्य भी उग जाएँ तब भी उल्लू के लिए अंधेरा बना ही रहता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. सुमेलित करें-

जोइन्दु	-	परमात्म प्रकाश
मुनिराम सिंह	-	योगसार
देवसेन	-	सावयधम्म दोहा
जोइन्दु	-	पाहुड़ दोहा

14.6 सारांश

इस इकाई का पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि आदिकालीन जैन साहित्य प्रबंधकाव्य तथा मुक्तककाव्य के रूप में उपलब्ध होता है। स्वयंभू, पुष्पदन्त तथा धनपाल आदि प्रबंधकाव्य रचयिता जैन कवियों ने मानव जीवन की विभिन्न भावदशाओं की मार्मिक एवं कलात्मक अभिव्यंजना की है। जबकि जोइन्दु, मुनि रामसिंह, देवसेन आदि जैन कवियों ने अपनी मुक्तक रचनाओं में सिद्ध-नाथ कवियों के समान धार्मिक बाह्याचार, शास्त्रज्ञान आदि का खंडन करते हुए आत्मज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया है।

14.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क- असत्य ख- असत्य ग- सत्य

2. 1. स्वयंभू - पउमचरिउ
   पुष्पदन् - महापुराण
   धनपाल - भविस्सत कहा
   पुष्पदन्त - जसहरचरिउ

2. क- असत्य ख- सत्य ग- सत्य घ- असत्य

3. जोइन्दु- परमात्म प्रकाश
   मुनि राम सिंह- पाहुड़ दोहा
   देवसेन- सावयधम्म दोहा
   जोइन्दु- योगसार

14.8 संदर्भ गन्थ सूची

1. 'हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योगदान' डॉ0 नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
2. 'हिन्दी काव्य-धारा', राहुल सांकृत्यायन, किताब महल, इलाहाबाद, 1945

14.9 उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. 'हिन्दी साहित्य का आदिकाल', हजारी प्रसाद द्विवेदी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 20014
2. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सवंत् 2058 वि0
3. 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', डॉ0 रामकुमारी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2007

14.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. आदिकालीन जैन प्रबंधकाव्य तथा मुक्तककाव्य की प्रवृत्तिगत विशेषताओं पर सोदाहरण प्रकाश डालें।

इकाई 15 विद्यापतिः परिचय एवं पाठ

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 कवि -परिचय जीवन -परिचय
15.4 रचनाकार व्यक्तित्व
15.5 विद्यापति की रचनाएँ
15.6 सम्प्रदाय
15.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या
15.8 सारांश
15.9 शब्दावली
15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
15.12 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
15.13 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई से पूर्व आप आदिकाल की पृष्ठभूमि से परिचित हो चुके हैं। आपने आदिकाल के प्रमुख कवियों का समग्र अध्ययन कर लिया है। आप जानते ही हैं कि रचनाकार अपने युग की प्रवृत्तियों से प्रभावित होता है तथा लोक से बहुत कुछ ग्रहण करता है। वह लोक के जितना ही निकट

होता है, उतना ही लोक को प्रभावित भी करता है। प्रस्तुत इकाई में संक्रांत काल (आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल) के ऐसे ही एक विशिष्ट रचनाकार विद्यापति के जीवन, रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दिया गया है। तथा कुछ अंशों की व्याख्या की गयी है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप विद्यापति के रचनाकार व्यक्तित्व और कृतित्व का विश्लेषणात्मक परिचय दे सकेंगे। विद्यापति के काव्य का अध्ययन कर उसका रसास्वादन करेंगे तथा व्याख्या कर सकेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप :-

- हिन्दी साहित्य के आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के एक विशिष्ट रचनाकार के रूप में विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करेंगे।
- हिन्दी साहित्य में विद्यापति का स्थान निर्धारित करेंगे।
- विद्यापति की लोकचेतना को अनुभूत करेंगे।
- विद्यापति के काव्य का रसास्वादन कर सकेंगे

15.3 कवि परिचय

हिन्दी साहित्य के अभिनव जयदेव के नाम से प्रख्यात विद्यापति का जन्म मिथिला के बिसपी नामक गांव में हुआ था। इनका जन्म 1352 में हुआ माना जाता है। इनकी माता का नाम हंसिनी देवी और पिता का नाम गणपति ठाकुर था। इनके पिता राजा शिवसिंह के सभासद थे। विद्यापति के पदों में यत्र-तत्र राजा शिवसिंह और रानी लखमा देवी का जिक्र आया है। बहुत सारे अन्य पुराने रचनाकारों की भांति विद्यापति के जीवन के संदर्भ में भी ऐतिहासिक प्रमाणों पर मतभेद मिलते हैं। इस संदर्भ में उनकी रचनाओं को आधार बनाया गया है। हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'सम्भवतः इनका जन्म 1368ई. में हुआ है कीर्तिलता में इन्होंने अपने को कीर्तिसिंह का लेखन-कवि कहा है जो सम्भवतः उन्हें कीर्तिसिंह का बाल्य -बंधु सिद्ध करता है। इस हिसाब से इनका जन्म समय कुछ और पहले होना चाहिये। विद्वानों का अनुमान है कि इस हिसाब से इनका जन्म 1360 ई. हुआ होगा। विद्यापति मिथिला के बिसपी नामक गांव के रहने वाले थे। ये मिथिला के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।'

श्री नगेन्द्र नाथ गुप्त इनका जन्म 1358 ई. बताते हैं, महामहोपाध्याय पं0 हरप्रसाद शास्त्री1357 ई., श्री रामवृक्ष बेनीपुरी 1350ई. और डा. बाबूराम सक्सेना1357 ई. से 1359 ई.के बीच किसी भी

समय। श्री रामनाथ झा, श्री शिवनंदन ठाकुर एवं डा. जयकांत मिश्र आदि 1360 ई. में विद्यापति का जन्म मानते हैं। जन्मकाल की ही भांति इनका मृत्युकाल भी अनुमान का विषय बना हुआ है। राजा शिवसिंह विद्यापति के परम मित्र और हितैषी थे। उनकी मृत्यु के बीस वर्ष बाद कवि ने राजा को स्वप्न में देखा यह उल्लेख **सपन देखल हम सिवसिंध भूप** कवि की ही रचना में मिलता है। विद्यापति को अपनी मृत्यु का पूर्वज्ञान हो गया था। उन्हें अपने पूर्वज,गुरूजन स्वप्न में दिखाई देने लगे थे- **बहुत गुरुजन-प्राचीन।/ आव मेलहु हम आयु विहीन।।** अंत निकट देख वे गंगा लाभ को चले गए और बनारस में उनका देहावसान कार्तिक धवल त्रयोदशी को सन १४४० ई. में हुआ।यह उन्हीं की इन पंक्तियों से पता चलता है। विद्यापतिक आयु अवसान। कार्तिक धवल त्रयोदसी जान।।प्राचीन काल में हमारे यहाँ परम्परा रही है कि लोग अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में वानप्रस्थ आश्रम में चले जाया करते थे अर्थात् सांसारिक जीवन को छोड़कर प्रभुभक्ति में लीन हो जाते थे और काशी तथा गंगावास करते थे। इसी परम्परा का निर्वाह विद्यापति ने भी किया है।

(क) महाकवि विद्यापति ठाकुर के पारिवारिक जीवन का कोई स्वलिखित प्रमाण नहीं है, किन्तु मिथिला के उतेढ़पोथी से ज्ञात होता है कि इनके दो विवाह हुए थे। प्रथम पत्नी से नरपति और हरपति नामक दो पुत्र हुए थे और दूसरी पत्नी से एक पुत्र वाचस्पति ठाकुर तथा एक पुत्री का जन्म हुआ था। लोगों का एक विचार है, संभवत: 'दुल्लहि' इनकी पुत्री थी जिसका जिक्र अन्तिम दिनों में रचित इनके एक गीत में है। नरपति ठाकुर ज्योतिष शास्त्र के परम विद्वान थे। इन्होंने ज्योतिष सम्बन्धी एक ग्रन्थ दैवज्ञ आंधव लिखा भी था। मैथिल भाषा में इनकी कुछ कवितायें भी उपलब्ध हैं। कहा जाता है कि इनकी पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।
विद्यापति ने ओईनवार राजवंश के अनेक राजाओं के साथ रहकर अपनी विद्वत्ता एवं दूरदर्शिता से उनका मार्गदर्शन किया। जिन राजाओं ने महाकवि विद्यापति को अपने यहाँ सम्मान के साथ रखा उनमें प्रमुख है:

(क) देवसिंह (ख) कीर्तिसिंह (ग) शिवसिंह (घ) पद्मसिंह (च) नरसिंह (छ) धीरसिंह (ज) भैरवसिंह और (झ) चन्द्रसिंह।

महाकवि इसी राजवंश की तीन रानियों के सलाहकार भी रहे। ये रानियाँ है:

(ख) लखिमादेवी (ख) विश्वासदेवी (ग) धीरमतिदेवी।

(ग) स्पष्ट है कि विद्यापति को न केवल वाग्देवी का वरदान प्राप्त था वरन् राज्याश्रय और लोकप्रियता भी मिली। ''विद्यापति उन इने–गिने सौभाग्यशाली व्यक्तियों में से थे जिन्हें कवित्वशक्ति, प्रतिष्ठा, विद्वत्ता और सांसारिक वैभव युगपत् प्राप्त होते हैं। उनकी पदावली में उनके कई उपनाम हैं।जैसे अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार,

कविरंजन, कविशेखर,दशावधान, राजपंडित आदि।'' इनका मानना है कि उस युग में उपाधि या उपनाम राजाओं से ही प्राप्त होते थे। विद्यापति को कवि कोकिल अथवा मैथिल कोकिल के नाम से भी अभिहित किया गया है।

बोध प्रश्न 1

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

क. विद्यापति को ..... के नाम से भी अभिहित किया गया है। (वासंती कोकिल / मैथिल कोकिल)

ख. विद्यापति मिथिला के ..... नामक गांव के रहने वाले थे। (बिसपी /ईसपी)

ग. विद्यापति ..... के राजा कीर्तिसिंह और शिव सिंह के दरबारी कवि रहे।'। (वैशाली / मिथिला)

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ. विद्यापति ओईनवार राजवंश की किन रानियों के सलाहकार रहे हैं?

.....

ब. विद्यापति के पाँच उपनाम बताइए।

.....

.....

स. विद्यापति की पुत्रवधू के बारे में बताइए।

.....

.....

15.4 रचनाकार व्यक्तित्व

ये अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे । इनकी अधिकांश रचनाएं अवहट्ठ एवं संस्कृत में हैं। कीर्तिलता एवं 'कीर्तिपताका ' इनकी अवहट्ठ रचनायें हैं जिनमें इनके आश्रयदाता राजा शिवसिंह की प्रशंसा है। इनकी 'पदावली की रचना मैथिली में हुई है। कहा जाता है इन्होंने बड़ी लम्बी उम्र पाई थी,

कई राजघरानों के हेर-फेर अपनी आंखों से देखे थे। बूढ़े राजाओं, बूढ़ी रानियों से लेकर अविकसित राजकुमारों व राजकुमारियों तक से कवि का अति निकट का सम्पर्क रहा। राजपुरुषों के कूटनीतिक दांव-पेंच उन्हें भली-भांति मालूम थे।उन्होने संस्कृत के माध्यम से दसियों नीतिग्रन्थ और शिक्षाग्रंथ भी तैयार किए थे। एक राजा पड़ोसी देश के राजा को किस प्रकार पत्र लिखेगा,एक सेनापति एक अधिकार-प्राप्त युवराज को किस तरह अपनी बात सूचित करेगा, दासों के लिए 'मुक्ति-पत्र' किस प्रकार लिखे जाएंगे-इस प्रकार के व्यवहारिक पत्र -लेखन के दर्जनों नमूने अपनी पुस्तक 'लिखनावली' में हमें दे गए हैं। राजकुमारों की नीति-शिक्षा के लिए समकालीन ऐतिहासिक-सामाजिक पात्रों के आधार पर नीति-शिक्षा की पुस्तक तैयार की थी। एक किंवदन्ती के अनुसार विद्यापति बाल्यावस्था से ही तीव्र -बुद्धि और कवि स्वभाव वाले थे। जब ये मात्र आठ वर्ष के थे तब एक बार अपने पिता के साथ राजा शिवसिंह के दरबार में गए वहां राजा शिवसिंह के कहने पर उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों की रचना की - पोखरि रजोखरि अरु सब पोखरा ।

राजा शिवसिंह अरु सब छोकरा।।

मिथिला में इनके लिखे पदों को घर घर में हर मौके पर, हर शुभ कार्यों में गाया जाता है, चाहे उपनयन संस्कार हों या विवाह। शिव स्तुति और भगवती स्तुति तो मिथिला के हर घर में बड़े ही भाव भक्ति से गायी जाती है। :

जय जय भैरवी असुर-भयाउनी
पशुपति- भामिनी माया
सहज सुमति बर दिय हे गोसाउनी
अनुगति गति तुअ पाया। ।

शास्त्र और लोक दोनों ही संसार में इनका असाधारण अधिकार था। कर्मकांड हो या धर्म दर्शन हो या न्याय, सौन्दर्य शास्त्र हो या भक्ति रचना, विरह व्यथा हो या अभिसार, राजा का महिमा गान हो या सामान्य जनता के लिए गया में पिण्डदान, सभी क्षेत्रों में विद्यापति अपनी कालजयी रचनाओं की बदौलत जाने जाते हैं।

विद्यापति का व्यक्तित्व नाना प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधाराओं का साक्ष्य है। ये दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं ,श्रृंगारिक होते हुए भी भक्त हैं,शैव या शाक्त या वैष्णव कुछ भी होते हुए भी वे धर्म-निरपेक्ष हैं ,संस्कारी ब्राह्मण वंश में पैदा होते हुए भी वे मर्यादावादी या रूढ़िसंत्रस्त नहीं हैं। कवि कोकिल की कोमलकान्त पदावली वैयक्तिकता, भावात्मकता, भावाभिव्यक्तिगत स्वाभाविकता, संगीतात्मकता तथा भाषा की सुकुमारता एवं सरलता का अद्भुत प्रस्तुतीकरण करती है। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इनकी पदावली अगर एक तरफ इनको रससिद्ध, शिष्ट एवं मर्यादित श्रृंगारी कवि के रुप में प्रेमोपासक, सौन्दर्य पारसी तथा पाठक के हृदय को आनन्द विभोर कर देने वाले माधुर्य का स्रष्टा सिद्ध करती है तो दूसरी ओर इन्हें भक्त कवि के रुप में शास्त्रीय मार्ग एवं लोकमार्ग दोनों में सामंजस्य

उपस्थित करने वाला धर्म एवं इष्टदेव के प्रति कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय देने वाला एक विशिष्ट भक्त हृदय का चित्र उपस्थित करती है साथ ही साथ लोकाचार से सम्बद्ध व्यावहारिक पद प्रणेता के रुप में इनको मिथिला के सांस्कृतिक जीवन का कुशल अध्येता प्रमाणित करती है। इतना ही नहीं, यह पदावली इनके जीवन्त व्यक्तित्व की भोगी हुई अनुभूति का साक्षी बन समाज की कुरीतियों, आर्थिक वैषम्य, समाज में मौजूद अन्धविश्वास, भूत-प्रेत, जादू-टोना, आदि का उद्घाटन भी करती है। इसके अलावा पदावली का भाषा-सौष्ठव, लालित्य, पदविन्यास, रसात्मकता, प्रभावशाली अलंकार योजना, सुकुमार भाव व्यंजना एवं सुमधुर संगीत आदि विशेषताओं ने इसको एक उत्तम काव्यकृति के रुप में भी प्रतिष्ठित किया है। (विकिपीडिया से साभार) विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण ही की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं।

15.5 पुस्तक परिचय

विद्यापति का संस्कृत, अपभ्रंश तथा लोकभाषा मैथिली (हिन्दी की उपभाषा) पर पूर्ण अधिकार था। इन्होंने संस्कृत में 12 पुस्तकों भू-परिक्रमा, पुरुषा परीक्षा, लिखनावली,शैव सर्वस्वसार, गंगावाक्यावली, विभागसार, दानवाक्यावली, दुर्गा भक्ति तरंगिनी, गयापत्तलक, वर्षकृत्य, पांडव-विजय और मणिमंजरी की रचना की है। कीर्तिपताका संस्कृत और अपभ्रंश दोनों भाषाओं में है। पदावली मैथिली भाषा में है। पदावली ने इन्हें सर्वाधिक लोकप्रिय बनाया। संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी इन्होंने 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' कहकर लोकभाषा को आदर दिया। विद्यापति ने कहा- सक्कअ वाणी अहुअ न भावइ। पाउअ रस को मम्म न पावइ।।

देसिल बअना सब जन मिट्ठा। तैं तैंसन जम्पओ अवहट्ठा।।

जैसाकि सभी प्रारम्भिक रचनाकारों के साथ दिखाई देता है, विद्यापति की रचनाओं के साथ भी उपलब्धता और प्रामाणिकता के प्रश्न जुड़े हैं।

कीर्तिलता : यह विद्यापति का प्रथम ग्रन्थ माना जाता है। सौभाग्यवश विद्यापति की कीर्तिलता में कोई नहीं हो सका है। यद्यपि यह पुस्तक भी आश्रयदाता समसामयिक राजा की कीर्ति गाने के उद्देश्य से ही लिखी गयी है और कविजनोचित अलंकृत भाषा में रची गयी है, तथापि इसमें ऐतिहासिक तत्व कल्पित घटनाओं अथवा सम्भावनाओं के द्वारा धूमिल नहीं हो गया है।उस काल के मुसलमानों का ,हिन्दुओं का,सामन्तों का , शहरों का,लड़ाइयों का, सेना के सिपाहियों का इतना जीवन्त और यथार्थ चित्रण अन्यत्र मिलना कठिन है। बहुत कम स्थलों पर न केवल सम्भावनाओं का वृहदाकार बनाया है। कीर्तिसिंह का वीरत्व भी स्पष्ट हो जाता है और जौनपुर के सुलतान फीरोजशाह के सामने बैठकर अति नम्र भक्तिमान रूप भी स्पष्ट हुआ है। इन चित्रणों में कवि ने कीर्तिसिंह के द्वितीय रूप को दबाने या उच्चतर रूप में चित्रित करने का प्रयास नहीं किया, बल्कि ऐतिहासिक तथ्य को इस भाँति रखने

का प्रयत्न किया है कि जिस स्थान पर कथानायक झुकता है, वहाँ भी वह पाठक की सहानुभूति और परिशंसन का पात्र बना रहता है।

कीर्तिपताका: यह पुस्तक कीर्तिसिंह के प्रेम प्रसंगों पर आधारित है।

भू-परिक्रमा : राजा शिवसिंह की आज्ञा से लिखित भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

पुरुषा परीक्षा: इतिहास और नीतिशास्त्र का ज्ञान है।

लिखनावली : संस्कृत में पत्र लेखन कला सिखाने के उद्देश्य से लिखित ग्रन्थ है।

शैव सर्वस्वसार : राजा पद्मसिंह की रानी विश्वास देवी की प्रेरणा से यह ग्रन्थ लिखा गया। इस ग्रन्थ में भगवान् शिव की पूजा आराधना की विधि है।

गंगा काव्यावली : इसमें हरिद्वार से लेकर गंगासागर तक गंगा के तट पर स्थित तीर्थों, गंगास्नान, गंगा तट पर किये गये दान आदि के महात्म्य का वर्णन है।

विभाग सार : राजा शिवसिंह के चचेरे भाई नरसिंह देव नरेश के आदेश पर रचित इस ग्रन्थ में सम्पत्ति के विभाजन के नियमों पर प्रकाश डाला गया है। इस रचना से तत्कालीन मिथिला की सामाजिक स्थिति का पता चलता है।

दान वाक्यावली : महाराज नरसिंहदेव की रानी धीरमती के आदेश पर रचित इस ग्रंथ में दान की महिमा और व्याख्या तथा बारहों महीनों के दानों की विधियाँ हैं।

दुर्गा भक्ति तरंगिनी : यह कवि की अन्तिम रचना मानी जाती है। इसमें भगवती दुर्गा की पूजा-विधि और माहात्म्य का प्रमाण सहित वर्णन है।

बोध प्रश्न

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ. विद्यापति की 'पदावली' की रचना मैथिली में हुई है।

ब. विद्यापति वीररस के कवि हैं।

स. भू-परिक्रमा भूगोल-सम्बन्धी ग्रन्थ है।

द. दुर्गा भक्ति तरंगिनी विद्यापति की अन्तिम रचना मानी जाती है।

15.6 विद्यापति का सम्प्रदाय

कहा जाता है कि स्वयं भोले नाथ ने कवि विद्यापति के यहाँ उगना (नौकर का नाम) बनकर चाकरी की थी। विद्यापति के साहित्य में इतनी और ऐसी विविधता है कि उन्हें किसी एक मत का मान लेना कठिन हो जाता है। एक ओर वे **शैव सर्वस्वसार और शिव-स्तुतियाँ** लिखकर मतावलम्बी जान पड़ते हैं। दूसरी ओर दुर्गा भक्ति-तरंगिणी और देवी-स्तुतियाँ लिखकर जान पड़ते हैं। उन्होंने गंगा-स्तुतियाँ भी लिखी हैं। राधा-कृष्ण सम्बन्धी पद उन्हें वैष्णव मतावलम्बी दर्शाते हैं।

विद्यापति की पदावली में अधिकांश पद राधा-कृष्ण की प्रेमलीलाओं से सम्बन्ध रखते हैं। कहते हैं चैतन्य महाप्रभु विद्यापति के पदों को गाते-गाते इतना भाव-विभोर हो जाते थे कि उन्हें मूर्छा आ जाती थी। महाप्रभु की शिष्य परम्परा में आज भी विद्यापति के पद उसी भक्तिभाव से गाये जाते हैं। सहजिया सम्प्रदाय के भक्त, जो स्त्री-प्रेम को साधन मानकर ईश्वरी-प्रेम की ओर अग्रसर होते हैं, विद्यापति को सात रसिक भक्तों में से एक मानते हैं। विद्यापति के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि वे शिव के अधिक भक्त थे या राधा-कृष्ण के। उन्होंने तुलसीदासजी की तरह दोनों को एक रूप में देखा है। जिस प्रकार तुलसीदासजी ने राम को प्रधानता देकर उनका शिव से तादात्म्य किया है, उसी प्रकार विद्यापति ने भी शिव और विष्णु की साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट किया है।

भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसनखनहिं बघछला।।

खन पंचानन खन भुजचारि। खन संकर खन देव मुरारि।।

साथ ही यह भी सत्य है कि विद्यापति दरबारी कवि थे। उन्होंने अपने आश्रयदाता राजाओं के मनोविनोद के लिए इन पदों की रचना की थी। इनके पदों में अनेक स्थानों पर अंत में इनके आश्रयदाता राजाओं और रानियों के नाम भी आये हैं। कई पद ऐसे भी हैं जिनमें राधा और कृष्ण का नाम भी नहीं है -

ससन-परस रबसु अस्बर रे देखल धनि देह। नव जलधर तर चमकय रे जनि बिजुरी-रेह।।
आजु देखलि धनि जाइत रे मोहि उपजल रंग। कनकलता जनि संचर रे महि निर अवलम्ब।।
ता पुन अपरुब देखल रे कुच-जुग अरविन्द। विकसित नहि किछुकारन रे सोझा मुख चन्द।।
विद्यापति कवि गाओल रे रस बुझ रसमन्त। देवसिंह नृप नागर रे, हासिनि देइ कन्त।।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री विद्यापति को पंचदेवोपासक मानते हैं। किंतु सूर्य और गणेश की स्तुति में कवि का मन रमा हुआ नहीं दिखाई देता। राधाकृष्ण सम्बन्धी पदों को भक्ति के पद नहीं कहा जा सकता। यदि हम उनके प्रार्थना के गीत देखें तो हम पायेंगे कि विद्यापति शिव एवं शक्ति दोनों के प्रबल भक्त थे। शक्ति के रुप में उन्होंने दुर्गा, काली, भैरवि, गंगा, गौरी आदि का अपनी रचनाओं में यथेष्ठ वर्णन किया है।

15.7 काव्यपाठ तथा संदर्भ सहित व्याख्या

किसी भी साहित्यिक रचना को समझने के लिए उसका पाठ करने तथा व्याख्यायित करने की आवश्यकता होती है। कुछ अंशों में विषय की गहराई में जाने अथवा मूल कथ्य को समझने के लिए भी व्याख्या एवं विश्लेषण की आवश्यकता होती है। 'विद्यापति की पदावली' के कुछ महत्वपूर्ण पदों की संदर्भ सहित व्याख्या यहॉ दे रहे हैं। इसके बाद आप स्वयं संदर्भ-पुस्तकों से विद्यापति के और पाठों का अध्ययन तथा व्याख्या कर सकते हैं।

1. भल हर, भल हरि भल तुअ कला। खन पितवसन खनहिं बघछला।।

खन पंचानन खन भुज चारि। खन संकर खन देव मुरारि।।

खन गोकुल भए चराइअ गाय। खन भिख मॉगिए डमरू बजाय।।

खन गोविन्द भए लिअ महिदान। खनहि भसम भरु कांख बोकान।

एक सरीर लेल दुइ बास। खन बैकुण्ठ खनहि कैलास।।

भन विपरित बानि। ओ नारायन ओ सुलपानि।।

शब्दार्थ : हरि = विष्णु रूप। महिदान = महीदान, छाछ मांगना। हर = शिव। बोकान= धूल , चूर्ण । विपरित बानि= विरोधी वाणी

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि हर अर्थात् शिव तथा हरि अर्थात् विष्णु दोनों की एक साथ वन्दना करते हुए दोनों को समान आराध्य मानकर उनके प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को प्रकट करते हैं।

अर्थ : इस पद में कवि ने एक ही ईश्वर का दो रूपों- शिव-रूप तथा विष्णु-रूप में वर्णन किया है। वे कहते हैं,- हे भगवान्! आपके शिव-रूप तथा विष्णु-रूप दोनों ही सुन्दर हैं तथा आपके दोनों ही रूपों की कलों अत्यंत रमणीय हैं। आप क्षण भर में पीताम्बरधारी विष्णु और क्षण भर में बाघम्बरधारी शिव बन जाते हैं। आप एक पल में पांच मुख वाले शिव और अगले ही पल में

चार भुजा वाले विष्णु बन जाते हैं। आप क्षण भर में गोकुल पहुँचकर कृष्ण के रूप में गाय चराने लगते हैं और क्षण भर में शिव के रूप में डमरू बजाकर भीख मांगने लगते हैं। क्षण भर में कृष्ण बनकर गोपियों से छांछ मांगने लगते हैं और क्षण भर में ही भस्म लगाकर शिव का वैरागी रूप धारण कर लेते हो। हे प्रभु! मैं तुम्हारे इस रूप का कैसे वर्णन करूँ? तुम्हारे एक ही शरीर ने दो स्थानों पर निवास बना रखा है. क्षण भर में ही तुम बैकुण्ठ में हो तो क्षण मात्र में ही कैलास पर्वत पर विराजमान दिखाई पड़ते हो। विद्यापति कहते हैं कि मैं अपनी पिरीत वाणी से आपका वर्णन करता हूँ। कभी आपको नारायण रूप में वर्णित करता हूँ और कभी त्रिशूलधारी महादेव के रूप में। ये दोनों रूप एक-दूसरे के विपरीत हैं, किन्तु मैं अपनी वाणी से इनका एक साथ वर्णन कर रहा हूँ।

विशेष :

- यह स्तुतिपरक पद है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।
  भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है।
- पद में गेयात्मक्ता है।

2. चाँद सार लए मुख घटना,करु लोचन चकित चकोरे।।
अमिय धोय आँचर जनि पोछलि दह दिसि भेल उँजोरें।।
कामिनी कोने गढ़ली।
रूपसरूप मोये कहइत असँभव लोचन लागि रहलौ।।
गुरू नितम्ब भरे चलए न पारए माझ खानि खीनि निभाई।
भागि जाइत मनसिज धरि राखलि त्रिवलि-लता उरजाई।।
भनइ विद्यापति अद्भुत कौतुक ई सब वचन सरूपे।
रूपनारायण ई रस जानवि सिवसिंध मिथिला भूपे।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद विद्यापति पदावली से उद्धृत है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने नायिका के अद्भुत सौन्दर्य का वर्णन किया है। नायिका की सखी कृष्ण के प्रति उसके रूप का वर्णन कर रही है।

अर्थ : कवि नायिका की सखी के माध्यम से कहते हैं- ऐसा जान पड़ता है जैसे विधाता ने चन्द्रमा का सार-तत्व लेकर नायिका के मुख की रचना की है और चकोर पक्षी की चंचलता का भाव ऑंखों में भर दिया है। इसीलिये जब नायिका ने अपने मुख को पानी से धोकर ऑंचल से पोछा तब दसों दिशाओं में उजाला फैल गया। सखी आश्चर्य व्यक्त करती है- किसने ऐसी सुन्दर स्त्री की रचना की? उसे नायिका के सौन्दर्य का वास्तविक वर्णन करना असम्भव लगता है। यह सौन्दर्य तो ऑंखों में बस गया है। भारी नितम्बों के भार से वह चल नहीं सकती, मध्यभाग अर्थात् कमर इतनी पतली है कि लगता है, वह है ही नहीं। कहीं नायिका की पतली कमर नितम्बों के भार से टूट न जाये इस भय से कामदेव ने त्रिवली-रूपी लता से उसे बॉंध रखा है। विद्यापति कहते हैं कि नायिका का यह रूप विचित्र और अद्भुत जान पड़ता है, लेकिन यह सत्य है। वह कहते हैं कि मिथिला के राजा शिवसिंह पारखी हैं, रूप के पुजारी हैं, वह इस रस को जानते हैं।

विशेष :

- इस पद में नायिका का रूपवर्णन है।
- इसमें विद्यापति ने पौराणिक हरीशंकरी मूर्ति का सजीव एवं चित्रोपम वर्णन किया है।
- चाँद-सार लए मुख घटना.....में मुख और लोचन का 'घटना करु' का एक धर्म होने से दीपक, 'अमिय धेए ऑंचर धनि पोंछल दहि दिस भेल उजोरे' में अत्युक्ति भागि.....में अहेतु में हेतु की सम्भावना होने से हेतूत्प्रेक्षा और असम्बन्ध में सम्बन्ध कल्पित होने से सम्बन्धाश्योक्ति, चकित-चकोरे, दह-दिसि, कामिनी-कोने, खनि-खीन, सिब-सिंध में अनुप्रास तथा रूप-सरूप में सभंगपदयमक अलंकार है।
- राजा शिवसिंह का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है कि कवि ने राजा के मनोरंजन को ध्यान में रखते हुए काव्य-रचना की है।
- विद्यापति ने ईश्वर के दो रूपों और उनके विविध कार्यों का कलात्मक वर्णन किया है। वैष्णव-भक्ति एवं शैव-भक्ति का समन्वय प्रस्तुत किया है।
- हर-हरि, खन-खनहि, भसम-भर, विद्यापति-विपरति-वानि में अनुप्रास, खन शब्द का अनेक स्थानों पर दो बार प्रयोग होने से पुनरुक्तिप्रकाश तथा ण्क ही ईश्वर का दो रूपों में विविध तरीकों से वर्णन होने से उल्लेख अलंकार है।

- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है ।
- पद गेय है।

3. सैसव जौवन दुहु मिल गेल। श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।

वचनक चातुरि नहु-नहु हास। धरनिये चान कयल परकास।।

मुकुर हाथ लय करय सिंगार। सखि पूछय कइसे सुरत-विहार।।

निरजन उरज हेरत कत बेरि। बिहुँसय अपन पयोधर हेरि।।

पहिले बदरि सम पुन नवरंग। दिन-दिन अनंग अगोरल अंग।।

माधव देखल अपरूब बाला। सैसव जौवन दुहु एक भेला।।

विद्यापति कह तुहु अगेआनि। दुहु एक जोग इह के कह सयानि।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इसमें कवि ने नायिका के वय:संधिकाल का वर्णन किया है। वय:संधिकाल अर्थात् वह अवस्था जब नायिका बाल्यावस्था से युवावस्था में प्रवेश करती है।

अर्थ - कवि बताते हैं कि नायिका के शरीर में शैशव और यौवन दोनों अवस्थाओं का संगम हो गया है। शिशुता की झलक अभी छूटी नहीं है लेकिन अंग-प्रत्यंग से यौवन झलकने लगा है। नेत्र कर्णचुम्बी हो गए हैं,अर्थात् नेत्र बड़े-बड़े हो गए हैं और नेत्रों ने कटाक्ष करना सीख लिया है,वह सीधे-सीधे न देखकर कनखियों से तिरछी नजरों से केखने लगी है। बोलचाल में सहज सरलता के स्थान पर मन्द-मन्द हास चतुराई घुलटमिल गई है। उसे देखकर लगता है जैसे चन्द्रमा पृथ्वी पर उतरकर अपनी चॉदनी की छटा गिखेर रहा हो। अब वह शीशे में देख-देखकर श्रृंगार करने लगी है।सहेलियों से रति -क्रीड़ा सम्बंधी बातें पूछने लगी है। एकांत में बार-बार अपने उरोजों को देखती है और उन्हें बढ़ता हुआ देखकर प्रसन्न होती है। जो पहले बेर के समान छोटे थे अब नारंगी के समान बड़े हो गए हैं। कामदेव का प्रभाव नित्य उसके अंग-प्रत्यंगों पर बढ़ता जा रहा है। नायिका का सखी श्रीकृष्ण को बताती है कि उसने उस अपूर्व सुन्दरी बाला को देखा

है जिसके शरीर में शैशव और यौवन दोनों एक साथ दिखाई दिये हैं। विद्यापति कहते हैं हि माधव(श्रीकृष्ण) ने कहा कि वह(नायिका की सहेली) अज्ञानी है ,ऐसा कैसे हो सकता है कि दोनों अर्थात् शैशव(बालपन) और यौवन एक साथ हों

4. नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव॥
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि॥
गोरस बेचरा अबइत जाइत, जनि-जनि पुछ बनमारि।
तोंहे मतिमान, सुमति मधुसूदन, वचन सुनह किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बरजौवति, बन्दह नन्द किसोरा॥

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद विद्यापति की पदावली से उद्धृत है। इस पद में कृष्ण का राधा के प्रति प्रेमभाव दर्शाया गया है। राधा से मिलन के लिए प्रतीक्षारत कृष्ण का चित्रण प्रस्तुत पद में है।

अर्थ : राधा की सखी राधा से कहती है- हे राधिका नंद का पुत्र कदम्ब के वृक्ष के नीचे बैठकर धीरे-धीरे मुरली बजा रहा है। वह पहले से निर्धारित समय के अनुसार निश्चित स्थान पर पहुँच गया है और मुरली के माध्यम से बार-बार ,मुरली के स्वर में तेरा नाम ले- लेकर तुझे बुला रहा है । हे श्यामा, तुझसे मिलने के लिए मुरारि की व्याकुलता क्षण-क्षण बढ़ रही है। वह यमुना के किनारे के उपवन में विकल भाव से बार-बार उसी पंथ को निहार रहे हैं ,जिस ओर से तेरे आने की सम्भावना है। जो भी गोपी गोरस बेचने के लिए उधर से आती-जाती है ,वह वनमाली उसी से तेरे बारे में पूछता है। हे बुद्धिमती राधा,मधुसूदन (श्रीकृष्ण) तुझ पर अनुरक्त हैं,अत: तू कुछ मेरी बात भी सुन। विद्यापति कहते हैं- हे श्रेष्ठ युवती सुन,नंदकिशोर वन्दनीय हैं,तू उनकी वन्दना कर अर्थात स्वयं को उन्हें समर्पित कर उनकी व्याकुलता को दूर कर।

विशेष :

- यह श्रृंगारमूलक पद है।
- इसमें कृष्ण की प्रेमविह्वलता का वर्णन है।

- कृष्ण के लिए विविध नामों नंद का नंदन,मुरारि,वनवारि,मधुसूदन,नंदकिशोर का प्रयोग किया गया है। नंद का नंदन आनन्दित करने वाली प्रकृति के कारण कहा गया है। मुरारि-मुर तथा मधुसूदन- मधु नामक राक्षस का वध करने के कारण तथा नंदकिशोर नंद का पुत्र होने के कारण कहा गया है।

- राधा के लिए सखि सामरि(श्यामा) का सम्बोधन करती है। लक्षणग्रन्थों के अनुसार षोडषी को श्यामा कहते है। शीत ऋतु में उष्णता तथा ग्रीष्म ऋतु में शीतलता प्रदान करने वाली तपे हुए सोने की आभा वाली स्त्री को भी श्यामा कहा गया है।

- भाषा मैथिली है तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग किया गया है । पद में गेयात्मकता है।

- श्रुत्यानुप्रास की मनोहारी छटा है।

5. जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाऊनि, अनुगति गति तुअ पाया।।

वासर रैन सवासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगलि कय कूडा।।

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

घन-घन घनन घुँघरू कत बाजय, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनु माता।।

संदर्भ : प्रस्तुत पद मैथिल कोकिल के नाम से विख्यात कविवर विद्यापति की विद्यापति पदावली से लिया गया है।

प्रसंग : प्रस्तुत पद में कवि ने भैरवी की स्तुति की है। भैरवी पार्वती का ही एक रूप है,जो चामुण्डा काली के नाम से भी जानी जाती हैं। देवी का यह रूप असुरमर्दिनी का है जो दैत्यों का विनाश कर भक्तों को राहत देती है।

अर्थ : कवि देवी की आराधना करते हुए कहते हैं असुरों को भयभीत करने वाली देवों के देव महादेव अर्थात भगवान शिव की अर्द्धांगिनी,हे महामाया,तुम्हारी जय हो। कवि कहता है कि हे गोस्वामिनी , मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ ,कृपा कर मुझे ऐसी सुमति दो देवी कि मैं दिन-रात

आपके ही चरणों में अनुरक्त रहूँ, आपका ही अनुसरण करूँ। मेरा मन इधर-उधर न भटके। कवि कहते हैं देवी भैरवी के चरण नित्य ही शवों के ऊपर रहते हैं। केशों में चन्द्रकांत मणि विराजमान रहती है। देवी भैरवी ने कितने ही दैत्यों को मारकर निगल लिया है ,कितनों को मुँह में डालकर दाँतों से कुचल कर उगल दिया है। देवी का सलोना श्यामवर्ण है,नेत्र रक्तिम लाल हैं,जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो बादलों में कमल खिले हों। दाँतों की किटकिटाहट से विकट घोष कर रही हैं। उनके होंटो पर रक्त के झाग से बुलबुले उठते रहते हैं। पैरों में पहने घुंघरूओं की ध्वनि बादलों की गर्जन जैसी प्रतीत होती है। उनकी तलवार जिधर भी घूमती है,दैत्यों का वध करती है। कवि विद्यापति देवी से कहते हें कि वह उनके चरणों के सेवक हैं,वह अपने इस पुत्र को न भूलें,अपनी शरण में रखें।

विशेष:

- स्तुतिपरक पद है। देवी के असुरमर्दिनी रूप का सजीव चित्रण हुआ है।
- कवि ने देवी की प्रकृति के अनुरूप उन्हें विविध नामों से पुकारा है,जैसे भैरवि असुर भयाउनि(असुरों को भयभीत करने वाली) , पसुपति भामिनी (भगवान शिव की पत्नी),गोसाउनि(गोस्वामिनी अर्थात इन्द्रियों को वश में रखने वाली) आदि।
- भाषा मैथिल और शब्दावली तद्भव है। अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है। पद में गेयात्मकता है

बोध प्रश्न

1.विद्यापति की भाषा कौनसी है?

(अ) हिन्दी (ब)मैथिल (स) गुजराती(द) खड़ी बोली

2.विद्यापति ने किसकी कला को भला कहा है?

(अ)ब्रह्मा व विष्णु की (ब) विष्णु व इन्द्र की
(स) शिव व विष्णु की (द) इनमें से किसी की नहीं

3.रसराज किसे कहा जाता है?

(अ)शान्तरस को (ब)श्रृंगाररस को (स) वीररस को (द) वीभत्सरस को

4.निम्नलिखित में श्रृंगारी कवि कौन हैं?

(अ) कबीर(ब)तुलसी (स)मीरा (द) विद्यापति

15.8 सारांश

इस इकाई में आप संक्रांत काल के कवि विद्यापति के व्यक्तित्व एवं कृतियों से परिचित हुए। आपने कुछ चयनित पदों की व्याख्या के माध्यम से उनके काव्य को समझा। उनके काव्य में व्यक्त भावों तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से आप परिचित हुए। आपने जाना कि विद्यापति अनेक राजाओं के दरबार में रहे। राज्याश्रय के कारण आपने विविध विषयों और भाषाओं के ज्ञान की वृद्धि की। जीवन का अधिकांश समय राज्याश्रय में बिताने के बावजूद आप आम जनता के कवि थे। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में आपका स्थान अग्रणी है। आप हिन्दी, संस्कृत, बंगला, मैथिली और अपभ्रंश के न केवल अच्छे ज्ञाता थे वरन् आपने अपनी रचनाओं से इन सभी भाषाओं को समृद्ध भी किया है। आपके गीत भक्ति और श्रृंगाररस के अद्भुत उदाहरण हैं। आज भी मिथिलांचल में विशेष धार्मिक एवं सामाजिक अनुष्ठानों में आपके गीत घर-घर में गाये जाते हैं, यही नहीं आपके गीत इंटरनेट पर यु-ट्यूब में भी सुने जा सकते हैं।

15.9 शब्दावली

रूढ़िसंत्रस्त	:	रूढ़ियों में जकड़ा हुआ
शास्त्रीय मार्ग	:	शास्त्रों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकमार्ग	:	सामान्य लोगों द्वारा निर्धारित नियमानुसार व्यवहार
लोकाचार	:	समाज में आपसी व्यवहार
पदविन्यास	:	पदों की बनावट
देसिल बअना	:	स्थानीय भाषा (मैथिली भाषा से तात्पर्य है)
प्रक्षेप	:	बाद में जोड़ा गया
शैव	:	शिव को पूजने वाले
शाक्त	:	शक्ति (देवी) की उपासना करने वाले
पंचदेवोपासक	:	पंचदेवों में विष्णु, शक्ति, सूर्य,शिव और गणेश जो क्रमश: आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और जल के अधिपति हैं। ये ही पंचतत्व हैं। इनकी उपासना करने वाले पंचदेवोपासक माने जाते हैं।

पदावली : पदशैली में लिखित काव्य को पदावली कहते हैं।

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. क मैथिल कोकिल

ख बिसपी

ग मिथिला

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ . विद्यापति ओईनवार राजवंश की लखिमादेवी (देई) (ख) विश्वासदेवी और (ग) धीरमतिदेवी रानियों के सलाहकार रहे हैं?

ब . विद्यापति के पांच उपनाम अभिनव जयदेव, कविराज, कविकण्ठहार, मैथिल कोकिल,दशावधान हैं।

स . कहा जाता है कि विद्यापति की पुत्रवधू चन्द्रकांता भी अच्छी कविता करती थी।

3 .निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (√) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ) **(√)**

ब) **(×)**

स) **(√)**

द) **(√)**

15.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1 जुयाल,डा. गुणानन्द, विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली , पृ0300 खण्ड 3

3. दीक्षित, डा. आनन्दप्रकाश, विद्यापति, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर

4. नागार्जुन , नागार्जुन ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन ,नई दिल्ली

5 . वर्मा, डा. धीरन्द्र , हिन्दी साहित्य कोश, पृ .532 , ज्ञानमंडल वाराणसी

6 . विकिपीडिया

15.12 उपयोगी पाठ्य सामग्री

जुयाल डा. गुणानन्द विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

सिंह,डा. शिवप्रसाद विद्यापति, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन

बेनीपुरी,रामवृक्ष विद्यापति पदावली, पुस्तक भंडार लहरिया सराय,बिहार

झा,रमानाथ विद्यापति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

15.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यापति के व्यक्तित्व व कृतित्व पर विस्तृत प्रकाश डालिए।
2. विद्यापति को मैथिल कोकिल क्यों कहा जाता है, स्पष्ट कीजिए तथा विद्यापति की भक्ति भावना पर टिप्पणी लिखिए।

इकाई 16 विद्यापति : साहित्य एवं आलोचना

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 विद्यापति पदावली
16.4 भावपक्ष
16.5 श्रृंगारी कवि अथवा भक्त कवि
16.6 लोक चेतना
16.7 अपरूप के कवि एवं गीति तत्व
16.8 मुक्तक काव्य
16.9 कलापक्षीय विशेषतायें
16.10 सारांश
16.11 शब्दावली
16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची
16.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री
16.15 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने विद्यापति के व्यक्तित्व तथा रचनाओं के बारे में जाना। साथ ही आपने उनके पदों की विस्तृत व्याख्या का अध्ययन भी किया।

प्रस्तुत इकाई में विद्यापति की पदावली के आधार पर विद्यापति के काव्य के भाव-जगत और शिल्पी पक्ष को उद्घाटित किया गया है।

इसके अध्यायन के बाद आप विद्यापति के काव्य-वैशिष्ट्य को अनुभूत कर उनकी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यदयन के बाद आप -

- विद्यापति पदावली का विश्लेषण करेंगे।
- विद्यापति की लोकचेतना को अनुभूत करेंगे।
- हिन्दी साहित्य के आदिकाल एवं भक्तिकाल के संधिकाल के एक विशिष्ट रचनाकार के रूप में विद्यापति के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्व का विश्लेषण करेंगे।
- हिन्दी काव्य साहित्य के इतिहास में विद्यापति का स्थान निर्धारित करेंगे

16.3 विद्यापति पदावली

विद्यापति की संस्कृत रचनाओं से उनकी विद्वत्ता का परिचय मिल जाता है किन्तु कीर्तिलता, कीर्तिपताका और पदावली ही कवि की ऐसी रचनाएं हैं जिनके कारण उन्हें महाकवियों की श्रेणी प्राप्त हुई है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका, अपभ्रंश और अपभ्रंश मिश्रित संस्कृत में लिखी गई हैं। ये कवि की आरम्भिक रवनाएँ हैं इसलिए इनमें काव्य प्रतिभा का वह विकास नहीं दिखाई देता जो उनकी पदावली में दिखाई देता है। विद्यापति पदावली में भाव एवं काव्यात्मक तत्वों का चरमोत्कर्ष है। विद्यापति की 'पदावली' मुक्तक रचना के रूप में है। मुक्तक रचना का प्रत्येक पद अपने में पूर्णता लिये होता है।

विद्यापति चौदहवीं शताब्दी के कवि थे और निर्विवाद रूप से उनका यश सोलहवीं शताब्दी के अंत तक समस्त पूर्वी भारत में व्याप्त हो चुका था। उनके गीत घर-घर में गाये जा रहे थे1 अनेक कवि उनके अनुसरण पर पद रचना करने लगे थे, जिन्होंने अपनी रचनाओं में आदरपूर्वक विद्यापति का अपनी रचनाओं में स्मरण भी किया है। लेकिन बीसवीं सदी से पूर्व विद्यापति के समस्त पदों को

संकलित करने का प्रयास अथवा संकलन-ग्रंथ प्राप्त नहीं होता।
पदावली की प्राप्त पाण्डु-लिपियों को देखने से प्रतीत होता है कि ये तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं- 1. नेपाल से प्राप्त पाण्डुलिपि 2.मिथिला की पोथियाँ रागतरंगिनी, रामभउपुर की पोथी 3.बंगाल में संकलित (क्षणदागीत विन्तामणि, पदामृत समुद्र, पदकल्पतरु, संकीर्तनामृत और कीर्तनानन्द). विद्यापति के पदों के संकलन का कार्य सबसे पहले शारदा चरण मिश्र ने किया। 1881 ई. में जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने गायकों के मुख से सुनकर 82 पद एकत्र किए। बाद में बंगाल के नगेन्द्रनाथ गुप्त ने 1316 बंगाब्द में विद्यापति पदावली का सम्पादन किया। 'विद्यापति ठाकुर की पदावली' के नाम से प्रकाशित इस ग्रन्थ में 936 पदों का संग्रह किया गया है। इसी के आधार पर श्री ब्रजनन्दन सहाय की 'मैथिल कोकिल विद्यापति' तथा श्री रामवृक्ष बेनीपुरी की 'विद्यापति पदावली' के नाम से सम्पादित पुस्तकें प्रकाशित हुईं।

विद्यापति की पदावली का विषय तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (1) वंदना (2) राधा-कृष्ण की प्रणयलीला,(3) विविध।'पदावली' एक संकलित ग्रन्थ है। प्रारम्भ में कृष्ण, राधा एवं देवी की वंदना है और अंत में प्रार्थना ओर नचारियाँ हैं, जिनमें – दुर्गा, सीता और गंगाजी की स्तुति के अतिरिक्त शिव-विवाह सम्बंधी पद हैं। 'पदावली' का मुख्य विषय-राधाकृष्ण की प्रेमलीला है।भाव पक्ष और कलापक्ष के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि विद्यापति के काव्य में यदि भावपक्ष की माधुरी है तो कलापक्ष की पूर्ण साज-सज्जा भी है।

बोध प्रश्न

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तर को इकाई के अंत में दिये गए उत्तर से मिलाइये।

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

अ) विद्यापति की 'पदावली' ..... रचना के रूप में है। (प्रबंध / मुक्तक)

ब) विद्यापति .....शताब्दी के कवि थे। (चौदहवीं / बारहवीं)

स) विद्यापति के पदों के संकलन का कार्य सबसे पहले .....ने किया। (शारदा चरण मिश्र / राम शरण जोशी)

द) श्री रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा सम्पादित पुस्तक .....के नाम से प्रकाशित हुई। (विद्यापति पदावली', विद्यापति रचनावली)

16.4 भाव पक्ष

1 . **श्रृंगार रस** विद्यापति का मुख्य प्रतिपाद्य श्रृंगार रस है। इन्होंने श्रृंगार रस के दोनों रूपों संयोग एवं वियोग का अत्यंत विस्तार से वर्णन किया है, जो बहुत ही स्वाभाविक एवं मर्मस्पर्शी है। 'पदावली' में श्रृंगार की अविरल धारा बहती हुई दृष्टिगोचर होती है।

2 . **मधुर रस-** मधुर रस का वस्तु शिल्प श्रृंगार रस जैसा ही होता है तथापि इसमें भाव का कुछ अंतर होने से यह भक्ति कहलाता है। भक्ति रस का स्थायी भाव है- कृष्ण विषयक रति। मधुर रस के विभाव के अन्तर्गत कृष्ण को नायक और गोपियों को नायिका माना गया है।

3 . संयोग श्रृंगार- संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत विद्यापति ने तरुण-तरुणियों के मनोविज्ञान को राधा-कृष्ण के माध्यम से प्रस्तुत किया है। विद्यापति की वय:सन्धि, अभिसार, खंडिता, कलहांतरिता, मान, विरह विषयक कविताएं अत्यंत प्रसिद्ध हैं। विद्यापति के संयोग श्रृंगार की विशेषताएं इस प्रकार हैं-

(1) नख-शिख वर्णन : संयोग श्रृंगार में रूप-वर्णन प्रधान होता है। रूप-वर्णन में नख-शिख, वेश-भूषा, आकृति-प्रकृति, सुकुमारता आदि का वर्णन होता है। नख-शिख वर्णन शिख-नख वर्णन में भी परिवर्तित हो जाता है। नख-शिख का सम्बंध अलौकिक आलम्बनों से होता है और शिख-नख का लौकिक से। विद्यापति ने क्योंकि कुछ अलौकिकता भी रखी है, अत: उनका नख-शिख वर्णन भी प्रशंसनीय है और शिख-नख वर्णन भी। विद्यापति के नख-शिख वर्णन की विशेषता-बिम्ब प्रस्तुत करने में है। उनका नख-शिख वर्णन कहीं सामान्य रहा है कहीं अलंकृत, किन्तु अलंकृत वर्णनों में उनका मन बहुत रमा है, जिससे बड़े चमत्कारपूर्ण बिम्ब उभरे हैं। एक उदाहरण है-

पल्लवराज चरनजुग सोभित गति गजराज क भाने।
कनक कदलि पर सिंह समारल ता पर मेरू समाने।।
मेरे उपरदुइ कमल फुलायल नाल बिना रुच पाई।
मनिमय हार धार बहु सुरसरि तें नहिं कमल सुखाई।।

(2) वय संधि वर्णन : विद्यापति के श्रृंगार वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने श्रृंगार की प्रत्येक अवस्था का मनोरम वर्णन किया है। नायिका के शैशव और यौवन के मेल और नायिका की प्रतिक्रिया का अति सूक्ष्म अद्भुत वर्णन विद्यापति के काव्य में मिलता है।

सैसव जौवन दुहु मिल गेल। श्रवनक पथ दुहु लोचन लेल।।
वचनक चातुरि नहु-नहु हास। धरनिये चान कयल परकास।।
मुकुर हाथ लय करय सिंगार। सखि पूछय कइसे सुरत-विहार।।
निरजन उरज हेरत कत बेरि। बिहुँसय अपन पयोधर हेरि।।

विद्यापति के श्रृंगार वर्णन की एक और विशेषता यह है कि वे एक साथ नायक और नायिका के रूप का ऐसा चित्रण करते हैं कि एक ओर नायक पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है तो दूसरी ओर नायिका पर। नायक-नायिका के उनके रूप-गुण के आधार पर विभिन्न भेद मिलते हैं।

विद्यापति के काव्य में नायक-नायिका के अधिकांश रूप मिलते हैं। राधा के रूप में नायिका के परकीया, अज्ञातयौवना, मुग्धा, मानिनी, उत्कण्ठिता, वासकसज्जा, दिवाभिसारिका, शुल्काभिसारिका, कृष्णाभिसारिका, विरहिणी आदि रूपों का वर्णन है। विद्यापति के कृष्ण में धीर, ललित, उपपति, चतुर, शठ, धृष्ट और मानी नायक के दर्शन होते हैं। दूती और सखी भी पदावली में विद्यमान है। इस सखी में वाग्वैदग्ध्य और अंतरंगता है। कुलटोपदेश के रूप में प्रेम, प्रेम प्रदर्शन, काम-कला की शिक्षा देने के साथ-साथ संदेश लाना-ले-जाना करती है। इसीलिये आनन्द प्रकाश दीक्षित कहते हैं ,चतुर दूती विद्यापति के श्रृंगार की श्रृंगार है।

विरह वर्णन (वियोग श्रृंगार) आनन्द प्रकाश दीक्षित के शब्दों में कहें तो -" विद्यापति के विरह-चित्रण में भाव और कल्पना का तथा अनुभूति और तन्मयता का ऐसा अद्भुत सामंजस्य है कि पाठक सहज ही सुध-बुध भूलकर तन्मय हो जाता है। भावों की विविधता, व्यग्रता, परिवर्तनशीलता, दीनता, अनुरोध, वेदना-निवेदन, प्रेम का घातक प्रहार और उससे उत्पन्न पश्चाताप, उपालम्भ, विवशता, याचना अदि इतने अनेक रूपी भाव अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

विरह-वर्णन में कवियों का मन हमेशा ही रमा है। सामान्यत: विरह का आश्रय नायिका और आलम्बन नायक होता है। विद्यापति ने नायक के विरह का भी वर्णन किया है। विरह की स्थिति अनेक प्रकार से सम्भव है, जिसमें विदेश-गमन की स्थिति, मान तथा नायक की प्रतिकूलता प्रधान रही है। नायक(पति या प्रेमी) के विदेश-गमन से पूर्व की स्थिति में नायिका प्रोषितपतिका/ प्रयत्नपतिका और बाद में (गमनोपरान्त) प्रोषितपतिका बन जाती है। विरह चित्रण में प्रकृति बड़ी सहायता करती है। प्रकृति विरह को जाग्रत करती, पनपाती और उसे चरम पर पहुँचाती है।विद्यापति ने विरह की सभी स्थितियों का चित्रण भी किया है और प्रकृति के उद्दीपन रूपों का आश्रय भी लिया है। उन्होंने शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छा ,मरण आदि दशाओं का वर्णन किया है। विरह की इन विभिन्न दशाओं के उदाहरण निम्नवत् हैं-

कत दिन चाँद कुसुम हम भेली।
कत दिन कमल भ्रमर करु केली।। - स्मरण

पहिन पिया मोर सुमुख हेरिति पलक छोडल न भंग।
अपरूब प्रेम पास तनु बांधल, भब तेजल मार संग।। - गुण कथन

कथ दिन पिय मोर पुजब बात।
कबहुँ पयोधर दहेब हाथ।। - अभिलाषा

सो राम है? सो किय विछुरन जाय।
करि धरि माथुर अनुमति मांगलि ततहि पड़लि मुरछाय।। - मूर्च्छा

सजनी के कह आओब, मधाई।
विरह पयोधि पार किअ पाओब, मोर मन नहिं पतिआई।। - उद्वेग

कह तु कह सखि बोल तु बोल तु रे।
हमर पिया कौन देश रे।। -प्रलाप

विरह की चरम स्थिति में प्रिय के दर्शन नींद में भी नहीं होते क्योंकि नींद ही नहीं आती है-

सपनहु संगम पाओल रंग बड़ाओल रे,

विद्यापति ने प्रेमी कृष्ण की राधा के प्रति मिलन की आकुलता का भी वर्णन किया है-

नन्दनक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।
साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।
जमुनाक तिर उपवन उदवेगल, फिरि फिरि ततहि निहारि।।

विद्यापति संस्कृत-साहित्य और भारतीय काव्यशास्त्र के पंडित थे। उनके साहित्य में भारतीय काव्य में साहित्य-शास्त्र की प्राय: सभी परिस्थितियों, परम्पराओं और पद्धतियों को स्थान मिला है। भारतीय काव्यशास्त्रियों ने श्रृंगार को रसराज कहा है।..... श्रृंगार निरूपण में नायक-नायिका भेद काव्य शास्त्र का प्रमुख अंग रहा है।काव्यशास्त्रकारों ने श्रृंगार रस का विवेचन करते हुए 'रति' को श्रृंगार रस का स्थायीभाव बताया है। साहित्यदर्पणकार की दृष्टि में प्रिय वस्तु के मन के प्रेम-प्रेरित होकर उन्मुख होने की भावना का नाम रति है। श्रृंगार रस के स्थायी भाव के रूप में रति उस भावना, अनुभूति, कामना या वासना के अर्थ में ली जाती है, जिसके वशीभूत हो नायक-नायिका (स्त्री-पुरुष) शारीरिक या इन्द्रिय-सुख का उपभोग करना चाहते हैं। इसका आलम्बन विभाव है नायिका और आश्रय है नायक। उद्दीपन विभाव है- एकांत स्थान, चांदनी रात, उपवन, नदी-तट, रूप-सौन्दर्य, वेश-भूषा आदि। सात्विक अनुभाव हैं- कंप, रोमांच, स्वर-भंग, वैवर्ण्य, स्वेद आदि।उत्सुकता, हर्ष, लज्जा, ग्लानि, चिंता आदि संचारी भाव हैं। विद्यापति की रस-प्रक्रिया बड़ी वैज्ञानिक है।उनके अनेक पद रस-परिपाक के आदर्श उदाहरण हैं-

बोध प्रश्न

2. एक पंक्ति में उत्तर दीजिए

अ. विद्यापति द्वारा शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप वर्णित विरह की स्थितियों के बारे में बताइये।

ब.मधुर रस क्या है?

स.'साभरि, तोहरा लागि अनुखन विकल मुरारि।' यह पंक्ति किसने किससे कही है?

3. निम्नलिखित कथनों में सही कथन के सामने सही (□) गलत कथन के सामने गलत (×) का चिह्न लगाइए।

अ. विद्यापति ने प्रकृति के उद्दीपन रूपों का आश्रय भी लिया है। **( )**

ब.भारतीय काव्यशास्त्रियों ने शांतरस को रसराज कहा है। **( )**

स.विद्यापति संस्कृत-साहित्य और भारतीय काव्यशास्त्र के पंडित थे।**( )**

16.5 श्रृंगारी कवि अथवा भक्त कवि

विद्यापति पदावली का प्रतिपाद्य विद्वानों में विवादास्पद बना हुआ है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्यापति श्रृंगारी कवि हैं और उनकी भक्ति-भावना एक झीना आवरण मात्र है। कुछ विद्वान विद्यापति की पदावली को आध्यात्मिक विचारों तथा दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण मानते हैं। विद्यापति को भक्त कहने वालों में डॉ ग्रियर्सन प्रमुख हैं, उन्होंने कहा है कि " विद्यापति के पद लगभग सब के सब वैष्णव पद या भजन हैं। जिस प्रकार सोलोमन के पदों को इसाई पादरी पढ़ा करते हैं उसी प्रकार हिन्दू विद्यापति के चमत्कारी पदों को पढ़ते हैं और जरा भी कामवासना का अनुभव नहीं करते।" डॉ0 श्यामसुन्दरदास के अनुसार हिन्दी में वैष्णव-साहित्य के प्रथम कवि प्रसिद्ध मैथिल-कोकिल विद्यापति हुए। उनकी रचनायें राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत हैं। काल की पूर्वापरता का ध्यान रखते हुए हम यह कह सकते हैं कि हिन्दी में भक्ति -काव्य के प्रथम बड़े कवि हैं। उनकी रचनाएँ राधा और कृष्ण के पवित्र प्रेम से ओत-प्रोत है जिनमें कवि की भावमग्नता का परिचय मिलता है। यद्यपि संयोग श्रृंगार का यर्णन करते हुए विद्यापति कहीं कहीं असंयत भी हो गये हैं,पर उनकी अधिकांश रचनाओं में भाव-धारा बहुत ही निर्मल और सरस हुई है। डॉ. जनार्दन मिश्र के अनुसार, विद्यापति अपने को पत्नी (राधा) समझकर ईश्वर (कृष्ण) की उपासना पति के रूप में करते थे। डॉ.मिश्र की दृष्टि में विद्यापति की पदावली आध्यात्मिक विचार तथा दार्शनिक गूढ़ रहस्यों से परिपूर्ण है।

डॉ. जयनाथ नलिन विद्यापति को भक्त सिद्ध करने के कहते हैं-' भाषा और भावों की सूक्ष्मता, प्रांजलता, गहनता और सघनता के विकास-क्रम की कसौटी मानें तो क्रमश: शैव, शाक्त और वैष्णव धर्म की ओर उनका अग्रसर होना निश्चित होता है।' विद्यापति की भक्ति-भावना को वैज्ञानिक और शास्त्रीय आधार प्रदान करते हुए वे कहते हैं कि कवि स्वयं को सांसारिक सुखों से विरत करने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, वे संसार की स्वार्थपरता का अनुभव करते हैं, जो उनके वैरागी मन

की दशा का परिचायक है।

जतन अनेक धन पाये बटोरलु मेलि परिजने खय।

मरनक बेरि हेरि कोई न पूछत करम संग चलि जाय।।

वे ईश्वर के चरणों में ही अपना सहारा तलाशते हैं-

हे हरि, बन्दों तुअ पद नाय।
तुअ पद परिहरिपाप-पयोनिधि पार तर कौन उपाय।।

वे हरि से अपनी भूलों का प्रायश्चित करते हैं तथा ईश्वर के चरणों में परम सुख की अनुभूति करते हैं। विद्यापति को भक्त मानने के लिये यह तर्क दिया गया है कि विद्यापति कृष्ण को परब्रह्म मानते है। वह अवतार नहीं, अवतारी हैं, स्वयं भगवान हैं। कृष्ण का यही रूप श्रीमद्भागवत, ब्रह्मवैवर्तपुराण, निम्बकाचार्य, विष्णुस्वामी और बल्ल्भाचार्य ने स्वीकार किया है। सूर, रसखान आदि कवि भी इसी के अनुयायी हैं, और वे भी भक्त कहलाते हैं।भगवान का लीला-गान भक्ति का विशेष अंग है और विद्यापति ने लीला-गान में रुचि ली है। उन्होंने यह लीला-गान कान्ता-भाव की भक्ति के साथ किया है। विद्यापति की राधिका आरम्भ से अंत तक मुग्धा किशोरी है.विद्यापति ने राधिका की जिस प्रेममयी मूर्त्ति की कल्पना की है उसमें विलास-कलावती किशोरी का रूप स्पष्ट ही प्रधान है, पर सर्वत्र उस विलास के पीछे यह भावना छिपी हुई है कि प्रिय इससे प्रसन्न हों। राधिका का रूप भगवान् के लिये है, यौवन भगवान् के लिए है, प्रेम भगवान् के लिए है, विलास भी भगवान् के लिए है,- एक शब्द में उन्होंने भगवान् की संतुष्टि के लिये ही विलास-कलावती का रूप धारण किया है। अगर भगवान् किसी अन्य रूप से प्रसन्न होते और राधिका को यह खबर लग गयी होती , तो वे निश्चय ही उस 'अन्य रूप' को ही अपनातीं। चण्डीदास की राधा में मानस-सौन्दर्य अपनी चरम सीमा तक पहुँचता है। विद्यापति की राधा में शरीर-सौन्दर्य भी उसी प्रकार अपनी परिणति पर पहुँवता है। मगर यह कहना कि विद्यापति की राधिका में शरीर-सौन्दर्य ही प्रधान है, अन्याय है। यद्यपि यह बात होती भी तो विद्यापति की साधना में रत्ती भर न्यूनता नहीं आती। भक्त के विपरीत विद्यापति को श्रृंगारी कवि मानने के पक्ष में भी अनेक तर्क हैं। ' विद्यापति ने कीर्तिपताका में कहा है- राम को सीता की विरह -वेदना सहनी पड़ी इसलिए उन्हें काम-कला चतुर अनेक स्त्रियों के साथ रहने की उत्कट अभिलाषा हुई। इसी कारण उन्होंने कृष्णावतार लेकर गोपियों के साथ अनेक प्रकार के विहार किये।' इससे स्पष्ट होता है कि राधा-कृष्ण के श्रृंगार वर्णन में कोई दार्शनिक गूढ़ रहस्य नहीं है, जिससे उन्हें कबीर आदि रहस्यवादी भक्त या संत कवि ठहराया जाए।

विद्यापति के पद अधिकतर श्रृंगार के ही हैं, जिनमें नायिका और नायक राधा और कृष्ण हैं। इन पदों की रचना जयदेव के गीतकाव्य के अनुकरण पर ही शायद की गई हो। इनका माधुर्य अद्भुत है। विद्यापति शैव थे। उन्होंने इन पदों की रचना श्रृंगार काव्य की दृष्टि से की है, भक्त के रूप में नहीं। विद्यापति को कृष्णभक्तों की परम्परा में न समझना चाहिए।

आध्यात्मिक रंग के चश्मे आजकल बहुत सस्ते हो गए हैं। उन्हें चढ़ाकर जैसे कुछ लोगों ने

'गीतगोविंद' के पदों को आध्यात्मिक संकेत बताया है, वैसे ही विद्यापति के इन पदों को भी। सूर आदि कृष्णभक्तों के श्रृंगारी पदों की भी ऐसे लोग आध्यात्मिक व्याख्या चाहते हैं। पता नहीं बाललीला के पदों का वे क्या करेंगे। इस संबंध में यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि लीलाओं का संकीर्तन कृष्णभक्ति का अंग है। जिस रूप में लीलायें वर्णित हैं उसी रूप में उनका ग्रहण हुआ है, और उसी रूप में वे गोलोक में नित्य मानी गई हैं, जहाँ वृन्दावन, यमुना, निकुंज,कदंब, सखा, गोपिकायें इत्यादि सब नित्य रूप में हैं। इन लीलाओं का दूसरा बर्थ निकालने की आवश्यकता नहीं है।

बोध प्रश्न

4. विद्यापति के भक्तकवि होने के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्या विचार व्यक्त किये हैं

.....

.....

.....

.....

प्रकृति वर्णन : साहित्य के विभिन्न रूपों में प्रकृति-चित्रण की अपनी महत्ता रही है। प्रकृति-चित्रण की यह परिपाटी साहित्य में निरंतर दिखाई देती रही है। संस्कृत काव्यों की तरह विद्यापति के काव्य में भी प्रकृति दो रूपों में लक्षित होती है- आलम्बन या प्रतिपाद्य के रूप में और केवल उद्दीपन बनकर।

अभिनव पल्लव बइसंक देल।
धवल कमल फुल पुरहर भेल।।
करु मकरंद मन्दाकिनि पानि।
अरुन असोग दीप दहु आनि।।
माह हे आजि दिवस पुनमन्त।।
करिअ चुमाओन राय बसन्त।।

नायिका चाँद से कह रही है-

चन्दा जनि उग आजुक राति।
पिया के लिखिअ पठाओब पांति।।

विद्यापति ने विरह वर्णन में बारहमासे की पद्धति अपनाते हुए ऋतुओं का वर्णन किया है। संस्कृत कवियों की रीति पर विद्यापति के काव्य में भी अनेक उपमाओं, उत्प्रेक्षा और अनुप्रास से सुसज्जित बसंत का वर्णन मिलता है-

नृप आसन नव पीठल पात
कांचन कुसुल छत्र धरु मात
कुन्द वल्ली तरु धएल निसान
पाटल तूण असोक बलरान

वाल्मीकि का काव्य प्रकृति प्रधान है, कालिदास विशुद्ध प्रकृति के कवि माने जाते हैं। विद्यापति लोक के कवि थे। उसी परम्परा में वह आम जन को विविध ऋतुओं के खान-पान का ज्ञान देते हुए भी दिखाई पड़ते हैं-

साओनर साज ने भादवक दही। आसिनक ओस ने कार्तिकक मही।।
अगहनक जीर ने पुषक धनी। माधक मीसरी ने फागुनक चना।।
चैतक गुड़ ने बैसाखक तेल। जेठक चलब ने अषाढ़क बेल।।
कहे धन्वन्तरि अहि सबसँ बचे। त वैदराज काहे पुरिया रचे।।

16.6 लोक चेतना

विद्यापति के कृष्ण नन्दराजा के राजकुमार नहीं, ग्वाल थे, इसीलिये विद्यापति ने जिस वातावरण में उन्हें उपस्थित किया है, वह उसी के उपयुक्त है।राधा कृष्ण पर व्यंग्य करती हुई कहती है कैसा मूर्ख है यह कृष्ण , घोड़ा खरीदा जाता है या उधार मांगने से घी मिलता है? बैठने का स्थान नहीं खाने को व्यंजन मांगता है। आज तो बड़ा मजा आया। कान्हा का मिथ्या गौरव चूर-चूर हो गया। आकर पाँव के पास पुवाल पर बैठ गया। बेचारा पूछने लगा शय्या कहाँ लगी है। पास में फटी हुई चटाई और मन में पलंग। अहीरनियों के नाथ की बात ही क्या कहना-

कउड़ि पठओले पाव नहीं घोर
घीव उधार मां मति मोर

विद्यापति ने लोक-प्रचलित मुहावरों के प्रयोग से भाषा को एक नई शक्ति दी तथा अपने को अधिक जीवन्त और लोक-जीवन-सम्पृक्त बनाया। मुहावरों के साथ ही उन्होंने लोक-जीवन के अन्य तत्व भी ग्रहण किये। उदाहरण के लिये उनके गीतों में कई स्थानों पर प्रेम-विरह आदि की सूक्ष्म परिस्थितियों में लौकिक अंधविश्वास भूत-प्रेत, टोना-टोटका तथा अन्य प्रकार के रूढ़ विश्वासों का प्रयोग हुआ है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने इनका पोषण या समर्थन किया है, किन्तु लोक का आधार होने के कारण अपने लेखन का विषय बनाया है। विद्यापति की सामाजिक चेतना का परिचय एक और प्रकार से मिलता है। उन्होंने सारे अभिजात प्रयोगों के बावजूद कई स्थानों पर घोर ग्राम्य या लोक-प्रसूत प्रयोग किये हैं। राधा तथा गोपियों के द्वारा प्रयुक्त मुहावरों और लोकाक्तियों ने इसे जीवन्त बना दिया है। विद्यापति लोक के कवि थे। उसी परम्परा में वह आम जन को विविध ऋतुओं के खान-पान का ज्ञान देते हुए भी दिखाई पड़ते हैं-

साओनर साज ने भादवक दही। आसिनक ओस ने कार्तिकक मही।।
अगहनक जीर ने पुषक धनी। माधक मीसरी ने फागुनक चना।।
चैतक गुड़ ने बैसाखक तेल। जेठक चलब ने अषाढ़क बेल।।
कहे धन्वन्तरि अहि सबसँ बचे। त वैदराज काहे पुरिया रचे।।

16.7 अपरूप के कवि एवं गीति तत्त्व

विद्यापति की सौन्दर्य-दृष्टि - सौन्दर्य-दृष्टि मनुष्य में स्वाभाविक और सहज है,इसी सौन्दर्य-दृष्टि का जब वह विस्तार करता है तो विभिन्न कलाओं की सृष्टि होती है।सौन्दर्य से प्रेम उपजता है, सौन्दर्य प्रेम का मूल प्रेरक है। स्मृति ही प्रेमानुभूति है। विद्यापति का काव्य प्रेम का काव्य है। प्रेम का मूल प्रेरक है सौन्दर्य, उसका आश्रय है यौवन। विद्यापति श्रृंगारी कवि हैं, उनके काव्य में सौन्दर्य का पूर्ण और उत्कृष्ट रूप मिलता है। इन्होंने सौर्य के बाहरी और भीतरी दोनें रूपों का चित्रण किया है। रूप सौन्दर्य चित्रण के विविध रूप विद्यापति की पदावली में मिलते हैं। विद्यापति ने राधा-कृष्ण दोनों का ही रूप-सौन्दर्य चित्रित किया है, किन्तु राधा का विशेष राधा को कवि ने अपरूप, अपूर्व, अभिरामा आदि कहा है। राधा अनुपम सुन्दरी है, उसके सौन्दर्य का वर्णन नहीं किया जा सकता। विद्यापति कहीं तो उस रूप की छटा की अनुभूति के सम्बन्ध में पूछने तक की मनाही करते हैं- पूछहु जनु कहीं और कहीं स्वयं असमर्थ हो जाते हैं- जत देखल तत कहए न पारिअ। कभी इतना अभिभमत हो जाते हैं- कि आरे, की कहब आदि शब्दों का सहारा लेते हैं।शास्त्रीय परम्परा के अनुसार चन्द्रमा, कमल, हरिन, कोकिल, भ्रमर, चकोर, मोर, गजराज, कनक, कदलि, बिम्बाफल, दाड़िम, खुजन आदि सौन्दर्य के प्रतिमान रहे हैं। ये सभी राधा के अंग-प्रत्यंगों के उपमान बने हैं-

हरिन इन्दु अरविन्द करिनि हेम, पिक बूझल अनुमानी।
नयन बदन परिमल गति तन रूचि, अओ अति सुललित बानी।
कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल, ता अरूझायल हारा।
जनि सुमेरू उपर मिलि उगल, चाँद बिहुन सब तारा।
लोल कपोल ललित मनि कुंडल, अधर बिम्ब अधजाई।
भौंह भ्रमर प्रसापुट सुन्दर, से देखि कीर लजाई।'

सौन्दर्य की पराकाष्ठा यह है कि रूप के प्रतिमान भी राधा के रूप से लज्जित होकर कहीं जा छिपे-

'कबरी-भय चामरि गिरि-कन्दर मुखभय चाँद अकासे।
हरिन नयन भय, सर-भय कोकिलगतिभय गज बनवासे।
कुचभय कमल-कोरक जल मुँदिरहु।घट परवेस हुतासे,
दाड़िम सिरिफल गगन वास करू ।सभु गरल कर ग्रासे
भुजभय पंक मृनाल नुकाएल। कर-भय किसलय काँपे ।।'

यौवन के आगमन के साथ नायिका के अंगों में आ रहे परिवर्तन का वर्णन करने के लिए विद्यापति ने अनेक रूपक, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की योजना की है-

उरहि अंचल झांपि चंचल आप पयोधर हेरु

पौन पराभव मरद घन जानि थुल बेकत केयल सुमेरु।

अर्थात् जैसे शरद ऋतु के श्वेत बादल पवन से पराजित होकर पर्वत का आकार बना देते हैं, उसी प्रकार नायिका का लहराता हुआ श्वेत ऑचल उभरे स्तनों को प्रकाशित कर दे रहा है। इनकी राधा का सौन्दर्य सचेष्ट, हाव-भाव युक्त है। राधा की प्रत्येक भाव-भंगिमा कृष्ण को आकुल-व्याकुल करने वाली है। राधा का रूप ही नहीं, कृष्ण का रूप भी अपूर्व है, उसे देखते हुए नेत्र अघाते नहीं- जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल, में मानव राधा-कृष्ण के रूप को 'अपरूप' कहती है,जिसका वर्णन सुनकर लोगों को सहसा विश्वास न होगा, उसे देखते हुए राधा लज्जा और आकर्षण की द्विधा के काँटों में गिर पड़ी "

कान्ह हेरल छल मन बड़ साध।कान्ह हेरइत भेलएत परमाद।।
तबधरि अबुधि सुगुधि हो नारि। कि कहि कि सुनि किछु बुझय न पारि।।

दूतियाँ राधा और कृष्ण दोनों का वर्णन एक-दूसरे से करती हैं। विद्यापति को अपरूप का कवि कहा जाता है। उन्होंने स्थान-स्थान पर अपरूप तथा इसके समानार्थी शब्दों का प्रयोग किया है।

गीति तत्व - गीति-काव्य कविता का सर्वाधिक लोकप्रिय और परम्परा-प्रशंसित रूप है। गीत मानव सभ्यता के साथ जुड़ा है, अत: जैसे-लैसे मानव सभ्यता अपना रूप बदलती रही और विकसित होती गयी,वैसे ही वैसे गीत भी अपने विभिन्न नाम-रूपों में लोक व साहित्य में स्थान पाते रहे। हीगेल के मत में गीति-काव्य का कवि जगत् के सारे तत्वों को अपने में समाहित करता है,अपने वैयक्तिक प्रभाव से इसे पूर्णत: आत्मसात् करता है। और इस आत्मपरकता को सुरक्षित करने वाली शैली में अभिव्यक्त करता है।भारतवर्ष में गीत की परम्परा वेदों के समय से चली आ रही है। सामवेद जो देव-स्तुति का आदि ग्रन्थ है की प्रत्येक ऋचा संगीत के नियमों से अनुशासित है। **सामवेद के गान के आधार पर ही राग-रागनियॉं, उनका रंग-रूप, स्वर-ताल, देशकाल प्रभाव, वाद्य-यंत्र आदि का निरूपण हुआ। (आनन्दप्रकाश दीक्षित, 45)** संस्कृत साहित्य में गीति तत्व की प्रधानता है। महाकवि कालिदास के 'ऋतु संहार' और 'मेघदूत' को गीति काव्य की श्रेष्ठ रचनाएँ माना जाता है। जयदेव की गीत गोविन्द तो संस्कृत गीति-काव्य की सर्वोत्तम रचना है। हिन्दी में गीतिकाव्य की प्राचीनतम कृति 'सरहपा' की रचनाएँ हैं। सिद्ध लोग गा-गाकर अपने मत और अनुभूतियों का प्रचार किया करते थे। इनके गीत संक्षिप्त हुआ करते थे। नाथपन्थी साधुओं ने भी गीति-शैली अपनाई इनके गीत अपेक्षाकृत लम्बे हैं। **वेदों में गीत के दो प्रकार मिलते हैं- ऋक् और गाथा। सिद्धों के गीत प्रथम प्रकार के हैं और नाथों के दूसरी प्रकार के हैं। (आनन्दप्रकाश दीक्षित, 45) ई डब्ल्यू हापकिन्स** ने प्राचीन भारतीय गीति-काव्य को चार भागों में विभाजित किया है। पहले में धाम्रिक

और वीरगाथात्मक गीतियॉं, दूसरे में भक्तित्व प्रधान गीतियॉं, तीसरे में सहज प्रेमगीत और चौथे में ऐसे प्रेमगीत हैं जिनमें आध्यात्मिकता और रहस्य के साथ वासना के रंगों से रंजित अत्यंत गहन अरैर उलझे हुए हैं। (वर्धमान 87) हिन्दी में गीति-काव्य रचना का आरम्भ श्रृंगार एवं शौर्य की परिभूमि पर हुआ है। इसकी झलक हमें बीसलदेव रासो और जगनिक के आल्हा खण्ड में मिलती है। आल्हा खण्ड को विद्वान कथात्मक गीत का उत्कृष्ट रूप मानते हैं। अपभ्रंश की रचनाओं के बाद गीति-शैली का अच्छा नमूना खुसरो की रचनाओं में मिलता है। खुसरो स्वयं अच्छे गायक और संगीत-कला के आचार्य थे। खुसरो के पश्चात् हिन्दी गीतकारों में पहला नाम विद्यापति का है। हम विद्यापति को हिन्दी गीति-काव्य परम्परा का आदि-प्रवर्तक भी कह सकते हैं। आनन्द प्रकाश दीक्षित के अनुसार साहित्य और लोकमानस दोनों में विराजमान विद्यापति की पदावली ही हिन्दी की आदि गीति-शैली होने का दावा कर सकती है।विद्यापति से पहले के सिद्धों और नाथों के गीत भाव और शिल्प दोनों ही दृष्टि से अपनी परम्परा नहीं बना सके, यहाँ तक कि वे सिद्धांत पक्ष में निर्गुण सन्तों को प्रभावित करते हुण भी अपने गीति-शिल्प का प्रभाव उन पर नहीं डाल सके। उनका गीति-शिल्प उनके साथ ही समाप्त हो गया।मध्ययुगीन सन्तों ने अपना गीति-काव्य विद्यापति के ही आधार पर रचा है।रीतिकाल में आकर यह गीति-धारा प्राय: लुप्त दिखाई देती है, किन्तु भारतेन्दु के उदय के साथ इसका पुनरोदय होता है जो आज भी विविध नामरूपों में निरंतर प्रवहमान है। गीति-तत्वों के आधार पर विद्यापति के काव्य की परख के लिए तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं-1.गेयता 2..भाव-प्रसार और 3.प्रभाव-सीमा

गेयता - "गीति-काव्य व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द-रुप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके ।" महादेवी वर्मा विद्यापति के सभी में गेयता और नाद-सौन्दर्य है। इनके पद अधिकांशत: लघु आकार के हैं तथा मिथिला में आज भी विवाह तथा मांगगलिक अवसरों पर गाये जाते हैं। विद्यापति के गीत पूर्णतया संगीतात्मक हैं। उनमें अपेक्षित लय में स्वर-ताल है। स्वरों का आरोह-अवरोह अनुभूतियों को उकसाता है। उनकी संगीत भावना में सहज आकर्षण है। कोमलकांत मधुर शब्दावली का प्रयोग हुआ है। नाद-सौन्दर्य के लिए उन्होंने सानुप्रास शब्दों की पुनरुक्ति या द्विरुक्ति और गुण या क्रिया से सम्बधित शब्दों का उपयोग किया है। जैसे-

जय जय भैरवि असुर-भयाउनि, पशुपति भामिनी माया।
सहज सुमति वर दिअ हे गोसाऊनि, अनुगति गति तुअ पाया।।

वासर रैन सवासन शोभित, चरण चन्द्रमणि चूडा।
कतओक दैत्य मारि मुख मेलल, कतओ उगलि कय कूडा।।

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

16.8 मुक्तक काव्य

भारतीय काव्यशास्त्रकारों ने रूप-रचना के अनुसार काव्य के दो मुख्य भेद किये हैं- प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्धकाव्य में प्रतिपाद्य विशयवस्तु का पमर्वापर सम्बन्ध रहता है, जबकि मुक्तक में पूर्वापर प्रसंग का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। मुक्तक काव्य में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-

1. पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त हो। 2. रसाभिव्यक्ति में सहायक हो।
3. संक्षेप में भाव-प्रकाश करता हो। 4. केवल एक ही छंद में आबद्ध हो।

विद्यापति की पदावली एक मुक्तक काव्य रचना है। विद्यापति ने न केवल मुक्तक की शैली को अपनाया है बल्कि उसमें सफलता भी प्राप्त की है। उनका प्रत्येक पद एक स्वतंत्र इकाई है। प्रत्येक पद में एक स्वतंत्र और पूर्ण भाव है। विद्यापति ने आशा-निराशा, मिलन-विरह, उत्कंठा, अनुराग, अभिसार, संयोग, रति, मान-मनुहार आदि के अनेक स्वतंत्र चित्र उकेरे हैं। कहीं अज्ञात यौवन की झॉकी है, तो कहीं सद्य:स्नाता की छवि। कहीं प्रकृति-चित्रण है, कहीं संयोग की छटा है तो कहीं विरह की ज्वाला, कहीं शिव-स्तुति है तो कहीं देवी-वन्दना। प्रत्येक परिस्थिति और प्रत्येक चित्र अपने भिन्न कलेवर में है। विद्यापति को रससिद्ध कवि कहा जा सकता है। श्रृंगार-रस की अत्यंत सूक्ष्म और गहन अनुभूतियॉ विद्यापति के काव्य में विद्यमान हैं। रूप-सौन्दर्य, कौतुक, छलना, नखशिख, अभिसार आदि के प्रसंग पाठकों के मन में भिन्न-भिन्न भावानुभूति जगाकर रसाप्लावित कर देते हैं।

सम्पूर्ण भाव-चित्र को संक्षेप में वर्णित कर देना विद्यापति के काव्य की विशेषता है। एक छोटे से पद में लोक-गीत का भाव और भावोद्दीपन किस प्रकार हो सकता है, इसे निम्न पद से भली प्रकार समझा जा सकता है।

कर धर करु मोहे पारे, देव मैं अवरूब हारे कन्हैया।
सखि सब तेज चील गेलो, न जानूं कौन पथ भेलौ,कन्हैया
हम न जाएब तुअ पासे, जाएब ओघट घटे, कन्हैया।
विद्यापति एहो भाने गुजरि भजु भगवाने कन्हैया।।

एक ही छंद में आबद्ध होने का अर्थ है एक भाव की अभिव्यक्ति के लिए एक ही पद अपने आप में पूर्ण हो। मुक्तक के अनेक नामरूप हो सकते हैं- गीत, अनुगीत, प्रगीत, गीति। दोहा, छप्पय, सवैया, सोरठा, पद किसी भी शैली में उसे लिखा जा सकता है। विद्यापति का एक भाव एक ही पद में आबद्ध है। एक प्रकार के भाव-चित्र एकाधिक पदों में मिलते हैं, लेकिन अभिव्यक्ति की दृष्टि से वह पूर्णरूप से स्वतंत्र है। इतना ही नहीं अपनी भाव-संकुलता के कारण एक पद पढ़ने के बाद दूसरा पद पढ़ने की चाह जगती है।

16.9 कलापक्षीय विशेषतायें

भाव काव्यपुरुष की आत्मा है और शैली उसका शरीर । शैली विचारों का दृश्यमानर रूप है। रचनाकार जो कुछ देखता-सुनता, सोचता-समझता है और अनुभव करता है उसे अभिव्यक्त करना चाहता है। सामान्यतया शिल्प या शैली अथवा कलापक्ष के अन्तर्गत कवि की भाषा, अलंकार और छंदों की परख की जाती है। कलापक्ष के अन्तर्गत यह देखने की बात है कि कवि अपने भावों और विचारों को कितनी कलात्मकता और बिम्बात्मकता के साथ प्रस्तुत कर सकता है। विद्यापति का भाव-पक्ष जितना गहन तथा विस्तृत है, उनका शिल्प उसे अभिव्यक्ति देने में उतना ही समर्थ है।

भाषा शैली - विद्यापति का भाषा पर असाधारण अधिकार था। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, अवधी, मैथिली, बंगला आदि अनेक भाषाओं के पंडित होने के कारण उनका शब्द-भेडार भी विस्तृत था प्रतीक-योजना और शब्द, पद तथा वाक्ययोजना में भी वे कुशल थे। शब्द शक्ति का उन्हें अच्छा ज्ञान था और इसीलिए ये भावानुकूल भाषा का निर्माण कर लेते थे । इनकी भाषा में ओज, प्रसाद, माधुर्य तीनों गुण विद्यमान हैं। इनकी भाषा लोकभाषा के निकट थी इसलिये सरल, सरस और मधुर है। विद्यापति शब्दों के मर्म से परिचित थे, इसीलिए अर्थगर्भित शब्द-योजना में उन्हें कुशलता प्राप्त थी। डॉ. आनन्द प्रसाद दीक्षित के अनुसार ' विद्यापति का शिल्प बड़े मनोवैज्ञानिक आधार पर निखरा था। वे लोक-मानस के बड़े पारखी थे, इसीलिए उन्होने अपनी कला को भी लोक-कला के निकट रखा।उन्होने लोक–भाषा अपनाई, उसे लोक-हृदय ओर लोक-कण्ठ में विराजमान लोकोक्तियों और मुहावरों से सजाया और लोक-गीत की तरंगों पर बिठा कर लोगों के इस लोक के आनन्द(श्रृंगार और प्रेम) से लेकर लोकोत्तर आनन्द(भक्ति) तक के लिए मुखरित कर दिया।(107 पृ0) युद्ध प्रसंगों तथा शक्ति-स्वरूपा दुर्गा देवी की स्तुति में इनकी भाषा में ओजगुण विद्यमान है। इस शैली के अनुकूल समासयुक्त शब्दावली तथा संयुक्ताक्षरों का प्रयोग हुआ है-

साँवर वरन नयन अनुरंजित, जलद जोग फूल कोका।
कट-कट विकट ओठ पुट पांडरि, लिधुर फेन उठि फोका।।

घन-घन घनन घुँघरू कत बाजय, हन-हन कर तुअ काता।
विद्यापति कवि तुअ पद सेवक, पुत्र बिसरू जनु माता।।

साधारण वर्णनों, कथा-प्रसंगों आदि में प्रसाद-गुण पूर्ण शब्दावली का प्रयोग मिलता है , जिसमें न समास है, न कर्णकटु शब्द और न ही संयुक्ताक्षर का प्रयोग हुआ है। शब्दों के दोहराव और आनुप्रासिकता से माधुर्य की सृष्टि हुई है-

नन्दक नन्दन कदम्बक तरु तर, धिरे-धिरे मुरलि बजाब।
समय संकेत निकेतन बइसल, बेरि-बेरि बोलि पठाव।।

शब्द-शक्ति - सार्थक शब्द-योजना विद्यापति की भाषा का एक और गुण है। जैसे 'कामिनी करए सनाने। हेरतहि हनए पंचबाने। ' में कामिनी शब्द बड़ा सार्थक है। जिसमें काम का निवास हो वही कामिनी है, उसके कटाक्ष ही कामदेव के पॉच बाणों के समान हैं। एक ही शब्द को भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयोग कर अर्थ-विस्तार, प्रतीकात्मकता और बिम्बात्मकता विद्यापति के काव्य की विशेषता है। विद्यापति अपनी सजग और सूक्ष्म कल्पना द्वारा भावों का सजीव बिम्ब प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। उनकी पदावली में प्रत्येक पद में लाक्षणिकता और व्यंग्यात्मकता का गुण दिखाई देता है। वे ऐसी शब्द योजना करते हैं कि अनुभूति साकार हो उठती है।प्रतीकात्मकता अथवा बिम्बात्मकता में अप्रस्तुत विधान विद्यापति के काव्य की एक और विशेषता है। विद्यापति अपने काव्य में दो प्रकार से अप्रस्तुत का उपयोग करते हैं- एक वास्तविक और दूसरे कल्पनाजन्य।वास्तविक अप्रस्तुत को उपमा के अन्तर्गत रखा जा सकता है और कल्पनाजन्य को उत्प्रेक्षा के अन्तर्गत। विद्यापति के काव्य में रूपक, अपह्नुति अपन्हुति , अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, पर्यायोक्ति आदि। वैसे विभावना, निदर्शना, रूपक, ललितोपमा, तुल्योगिता, सन्देह, भ्रम आदि का भी उपयोग किया है; किन्तु उन्हें उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक ही विशेष प्रिय हैं। कालिदास की भॉति ही विद्यापति की उपमाऍं अनूठी और अछूती हैं, उनकी उत्प्रेक्षायें कल्पना के उत्कृष्ट विकास का उदाहरण हैं। विद्यापति ने रीतिकालीन कवियों की भॉति ही किसी-किसी पद में अनेक अलंकारों का प्रयोग भी किया है, जैसे-

माधव कि कहब सुन्दरि रूपे
कतेक जतन विहि आनि समारल देखलि नयन सरूपे।
राज चरण युग सोभित गति गजराजक भाने।
कनक कदली पर सिंह समारल तापर मेरु समाने।
मेरु उपर दुइ कमल फुलायल नाल बिना रुचि पा।
मनिमय हार धार वह सुरसार ते नहिं कमल सुखाई।
अधर बिम्ब सन दसन दाड़िम-विजु रवि ससि उगथिक पासे।
राहु दूरि बसु नियरो न आवधि तैं नहंि करधि गरासे।
सारंग नयन, बचन पुनि सारंग, सारंग तसु समधाने।
सारंग उपर उगल दस सारंगकेलि करथि मधु पाने।
भनहि विद्यापति सुन कर यौवति एहन जगत नहिं जाने।
राजा शिवसिंघ स्पनारायण लखिमादइ प्रति माने।

इस पद में एक साथ अनुप्रास, उपमा, रूपकाशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति तथा वस्तुप्रेक्षा का प्रयोग मिलता है

भाव-प्रसार - भाव-प्रसार की दृष्टि से विद्यापति की पदावली अत्यंत समृद्ध है।एक ओर उनके गीत भक्ति-भाव की सात्विकता लिए हुए हैं, तो दूसरी ओर श्रृंगार की माधुरी से मडित हैं, एक ओर वीर-काव्य की ओजस्विता है तो दूसरी ओर चमत्कारपूर्ण कौतूहल की सृष्टि हुई है। भक्ति-भाव में भक्त की दीनता और आराध्य के चरणों में समर्पण विद्यापति के भक्तिकाव्य में सर्वत्र विद्यमान है। 'निरधन जानि के हरहु कलेस' 'हम सम जग नहीं पतिता' ' तुम सम उधार न दोसर' 'दया कर सूलपानी' आदि पंक्तियों में कवि का यही आत्मसमर्पण और दैन्यभाव मुखरित हुआ है।

विद्यापति पर संस्कृत के गीतकाव्यकारों में सर्वाधिक प्रभाव गीतगोविन्द के रचयिता जयदेव का पड़ा है। उनके गीतों में जयदेव की शैली के साथ-साथ भावों का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। इसीलिए उन्हें 'अभिनव जयदेव' भी कहा जाता है। श्रृंगार के पदों में विद्यापति ने हृदय के भावों के उद्वेग का मार्मिक एवं प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है। उनके पदों में संगीतात्मकता, भाव-प्रवणता तथा माधुर्यव्यंजक कोमलकान्त पदावली का चरम उत्कर्ष है। श्रृंगार के पदों के बारे में इसी इकाई में पहले चर्चा हो गई है। हिन्दी गीति-काव्य परम्परा में विद्यापति का स्थान निधार्रित करते हुए डा0 गुणानन्द जुयाल कहते हैं-" विद्यापति के गीतों में यदि एक ओर लोकभाषा की तरलता और सुकुमारता है तो दूसरी ओर भावों की अनुपम माधुरी और साहित्य की अपूर्व सौन्दर्यमयता भी है। वे हिन्दी के आदि गीतकार हैं तो परवर्ती गीतिकारों के आदि गुरू भी हैं। उनके गीत हिन्दी साहित्य की अनूठी सम्पत्ति हैं।" **प्रभाव-सीमा -** विद्यापति के गीतों की प्रभाव-सीमा भी विस्तृत है। विद्यापति के गीत आम-जन और भक्त तथा वैरागी और संसारी सभी में समान रूप से लोकप्रिय हैं। मिथिला का लोकमानस आज भी उनके गीतों से उद्वेलित है। यह उनकी लोकप्रियता का ही प्रमाण है कि आज उनके गीत अंतरजाल (इंटरनेट) में 'यू ट्यूब' में भी उपलब्ध हैं। आप उन्हें सुनकर इन गीतों का आनन्द भी ले सकते हैं और विद्यापति के काव्य की बारीकियॉ भी समझ सकते हैं। विद्यापति लोकप्रिय कवि हैं। उनकी लोकप्रियता ही है जिसके कारण उन्हें हिन्दी के साथ-साथ बंगभाषी भी अपना मानते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कबीर को हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपना कहते हैं। कुछ समय तक तो ये बंगाली कवि ही माने गए, क्योंकि उनकी विचारधारा बंगाल की वैष्णव परम्परा से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। मिथिला के होने के कारण उन्हें मिथिला का कवि भी माना जाता रहा, इसीलिए उन्हें मैथिल कोकिल के नाम से अभिहित किया गया।

16.10 सारांश

इस इकाई में आपने विद्यापति पदावली के आधार पर उनके काव्य में व्यंजित भावों और उसकी कलात्मकता से परिचित हुए। आपने उनके काव्य की विशेषताओं को समझा। उनके काव्य में व्यक्त भावों तथा अभिव्यक्ति के वैशिष्ट्य से आप परिचित हुए। आपने जाना कि विद्यापति के पदों को

व्यापक लोकप्रियता मिली। विद्यापति आम जनता के कवि थे। हिन्दी के लोकप्रिय कवियों में इनका स्थान अग्रणी है। इनके गीतों में व्यक्त भक्ति और श्रृंगाररस के संदर्भ विविध आलोचकों के मतों का आपने अध्ययन किया। आपने इनकी भाषा और कला-सौष्ठव को जाना तथा इनकी लोकप्रियता के कारणों को जाना। अब आप विद्यापति के साहित्य की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकते हैं तथा हिन्दी साहित्य में विद्यापति का स्थान निर्धारित कर सकते हैं।

16.11 शब्दावली

अपरूप	:	अवर्णनीय अथवा वर्णनातीत सौन्दर्य
मुक्तक काव्य	:	मुक्तक काव्य ऐसी रचना को कहते हैं जिसमें रचना का प्रत्येक पद स्वतंत्र तथा अपने में पूर्णता लिये होता है। इसमें एक पद का दूसरे पद से सम्बंध नहीं होता।मुक्तक काव्य को पूर्वापर सम्बन्ध से मुक्त , रसाभिव्यक्ति में सहायक , संक्षेप में भाव-प्रकाश करने वाला तथा केवल एक ही छंद में आबद्ध होता है।
वय:सन्धि	:	किशोरावस्था, बाल्यावस्था एव यौवनावस्था के मिलन का समय।
अभिसार	:	प्रेमी-प्रेमिका का मिलन
खंडिता	:	नायिका का एक रूप
कलहांतरिता	:	नायिका का एक रूप
नख-शिख वर्णन	:	नायिका के अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का वर्णन
पुनरुक्ति	:	किसी बात को बार-बार कहना द्विरुक्ति : किसी बात को दो बार कहना

16.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

अ. मुक्तक

ब. चौदहवीं

स. शारदा चरण मिश्र

द. विद्यापति पदावली

2. अ. विद्यापति ने शास्त्रीय परम्परा के अनुरूप विरह की स्मरण, गुण-कथन, अभिलाषा, चिंता, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, मूर्च्छा ,मरण आदि दशाओं का वर्णन किया है।

ब. मधुर रस का वस्तु शिल्प श्रृंगार रस जैसा ही होता है, इसमें भाव का कुछ अंतर होने से यह भक्ति कहलाता है, इसका स्थायी भाव कृष्ण विषयक रति है।

स. इस पंक्ति में राधा की सखी कृष्ण की विकलता के बारे में राधा से कहती है।

3. अ. (√)

ब. (×)

स. (√)

16.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

जुयाल,डा. गुणानन्द विद्यापति का अमर काव्य,साहित्य निकेतन

द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड 3, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

दीक्षित, डॉ. आनन्दप्रकाश विद्यापति, साहित्य प्रकाशन मंदिर, ग्वालियर

नागार्जुन , नागार्जुन ग्रन्थावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी

श्यामसुन्दरदास डॉ., हिन्दी भाषा एवं साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, इलाहाबाद

16.14 उपयोगी पाठ्य सामग्री

वर्मा, डा. धीरेन्द्र हिन्दी साहित्य कोश, ज्ञानमण्डल,वाराणसी

सिंह,डॉ. शिवप्रसाद विद्यापति, विद्यापति, लोकभारती प्रकाशन

बेनीपुरी,रामवृक्ष विद्यापति पदावली, पुस्तक भंडार लहरिया सराय,बिहार

झा,रमानाथ विद्यापति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

16.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. विद्यापति के काव्य में श्रृंगार और भक्ति की विवेचना कीजिए।विद्यापति भक्त कवि हैं अथवा श्रृंगार के कवि स्पष्ट कीजिए।

2. विद्यापति का सम्पूर्ण जीवन परिचय देते हुए उनकी काव्यगत विशेषताओं की विवेचना कीजिए।

इकाई 17 अमीर खुसरो : परिचय ,पाठ और आलोचना

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 अमीर खुसरो: जीवन एवं साहित्य
17.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय
17.3.2 अमीर खुसरो का साहित्य
17.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना
17.4.1 अमीर खुसरो: पाठ
17.4.2 अमीर खुसरो: आलोचना
17.5 सारांश
17.6 शब्दावली
17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री
17.9 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम के अंतर्गत सम्मिलित है. इस इकाई के अध्ययन से पूर्व आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास के उद्भव ,उसकी सम्पूर्ण परम्परा एवं आतंरिक प्रक्रिया को समझा. इस के अलावा आपने हिन्दी कविता के आरंभिक काल , उसकी सम्पूर्ण पृष्ठभूमि एवं उसकी काव्य-संवेदना को भी समझा .

यह इकाई अमीर खुसरो के जीवन एवं साहित्य से संबन्धित है। इसमें आपका परिचय अमीर खुसरो के जीवन और साहित्य से कराया जा रहा है। इस भाग में अमीर खुसरो के जीवन, राजाओं के राजाश्रय एवं साहित्य कर्म पर विचार किया जायेगा। इस भाग में आप सकेंगे की खुसरो मात्र एक कवि ही नहीं थे अपितु एक पहुँचे हुए सूफी साधक भी थे। उनकी राजनैतिक समझ जितनी स्पष्ट थी उससे कहीं ज्यादा जन-सामान्य के रीति-रीवाजों की परख थी। इस बहुमुखी विशेषता के कारण ही उनको 'तूती-ए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया गया।

17.2 उद्देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

1. अमीर खुसरो का जीवन चरित समझ सकेंगे .
2. अमीर खुसरो के काव्य को समझ सकेंगे .
3. खड़ी बोली हिन्दी के विकास में उनका योगदान समझ सकेंगे.
4. सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत अमीर खुसरो का महत्व एवं उनकी प्रासंगिकता का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

17.3 अमीर खुसरो : जीवन एवं साहित्य

17.3.1 अमीर खुसरो का जीवन परिचय-

अमीर खुसरो का जन्म 1253 ई. (652 हि0) में उ0प्र0 के एटा जिले के पटियाली कस्बे में हुआ था। इनके पिताजी मध्य एशिया की लाचन जाति के एक तुर्क सरदार थे। चंगेज खाँ के आक्रमणों से पीड़ित होकर उन्होंने बलबन के शासनकाल में भारत में शरण लिया। खुसरो की माँ बलबन के एक मंत्री इमादुतुल मुल्क की लड़की, भारतीय मुसलमान थी। खुसरो मात्र सात वर्ष के थे

तभी इनके पिता की मृत्यु हो गयी, परन्तु इससे इनकी शिक्षा-दीक्षा पर कोई असर नहीं पड़ा। खुसरो ने अपने समय के विज्ञान और दर्शन में शिक्षा ग्रहण किया और काव्य-लेखन में रूचि पैदा की। बीस वर्ष की अवस्था तक वे एक कवि के रूप में प्रसिद्ध हो चुके थे ।कवि होने के कारण खुसरो कपोल-कल्पना में जीवित रहने वाले व्यक्ति न थे । सामाजिक जीवन से उनका गहरा सरोकार था और वे व्यवहारिकता में भी दक्ष थे ।कवि होने के कारण जहाँ उनके पास घोर कल्पनाशक्ति थी वहीं सामाजिक होने के कारण व्यवहारकुशल और कूटनीतिज्ञ भी थे । इनके व्यक्तित्व की विशेषता बतलाते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि ''ये बड़े ही विनोदी, मिलनसार और सहृदय थे , इसी से जनता की सब बातों में पूरा योग देना चाहते थे ।

आदिकालीन परम्परा के अनुसार कलाकार और बुद्धिजीवियों के जीविका का सर्वोत्तम उपाय राजाश्रय था। अमीर खुसरो ने भी अपने समकालीन राजाओं का आश्रय ग्रहण किया। इन्होंने दस से अधिक राजाओं के आश्रय में रहकर जीवन-यापन किया। इनके व्यक्तित्व की मुख्य विशेषता यह है कि इतने अधिक शासकों के राजाश्रय में रहने के बावजूद वे कभी भी दरबारी राजनीति के कुचक्रों का अंग नहीं रहे। इन सबसे मुक्त रहते हुए वे एक कवि, संगीतज्ञ, कलाकार और सैनिक के रूप में अपना जीवन-यापन करते रहे। खुसरो प्रसिद्ध सूफी संत निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे । उनके अन्दर अपने समय की राजनीति, धर्म और लोकव्यवहार को लेकर एक अजीब तरह का अन्तर्विरोध पाया जाता है। इस पर प्रकाश डालते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है ''खुसरो में अनेक अन्तर्विरोध थे । एक ओर वे मलिक छज्जू जलालुद्दीन, अलाउद्दीन खिलजी, तुगलक आदि के राजकवि थे तो दूसरी ओर सूफी फकीर निजामुद्दीन औलिया के पट्ट शिष्य। एक ओर दरबार था तो दूसरी ओर मठ। एक ओर वे कट्टर बादशाहों और मुल्लाओं से घिरे थे तो दूसरी ओर सूफी फकीरों से। एक ओर वे फारसी लिखते थे तो दूसरी ओ खड़ी बोली में। एक ओर अलाउद्दीन की कट्टरता की प्रशंसा करते थे तो दूसरी ओर सूफी फलसफे के प्रकाश में वीरानगी के सुलतान पर मरसिया पढ़ते थे ।''खुसरो एक साथ कई विधाओं के जनक थे। इस संदर्भ में उनको बहुमुखी प्रतिभा का धनी कहा जाता है। वे बहुभाषाविद्, संगीतकार और इतिहासकार थे । भाषा के संदर्भ में वे अरबी, फ़ारसी, तुर्की में पारंगत थे । संस्कृत भाषा का उन्हें ज्ञान था, हिन्दी, उर्दू साहित्य के वे प्रणेता माने जाते हैं। इसके अतिरिक्त वे भारत की कई क्षेत्रीय भाषाओं के भी जानकार थे । संगीत की दुनियाँ में भी उन्होंने कई आविष्कार किया। इसमें राग-रागिनियों से लेकर वाद्ययंत्र् तक सभी सम्मिलित हैं। वे संगीत के क्षेत्रों में अपनी परम्परा के साथ-साथ कई मौलिक उद्भावना भी की है। इन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी लयों के मिश्रण से कई रागों का आविष्कार किया जिसमें मुख्यतया-मजीर साजगिरी, एमन, उषआक, सनम है। इसके अतिरिक्त खुसरो ने सितार और ढ़ोलक जैसे वाद्य यंत्रों का भी आविष्कार किया।

कवि, संगीतज्ञ और भाषाविद होने के साथ-साथ अमीर खुसरो प्रसिद्ध इतिहासकार भी थे । इनका प्रसिद्ध इतिहासग्रन्थ 'तुगलकनामा' है। इसमें उन्होंने दिल्ली नरेश गियासुद्दीन तुगलक के समय का इतिहास लिखा है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत सी ऐसी मसनवियों की रचना की है जो

कि इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इनमें मुख्यतः- किरानुस्सादैन, खिजर खाँ, नुहासिपहर और इशकिमह है। इन पुस्तकों के अध्ययन से आपको तात्कालीन जीवन तथा घटनाओं के संदर्भ में विशेष ज्ञान प्राप्त होगा। इन ग्रन्थों में आपको जीवन के ऐसे-ऐसे सांस्कृतिक तत्व प्राप्त होंगे जो कि प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थों में अप्राप्य है।अमीर खुसरो और उनके गुरू निजामुद्दीन औलिया का आपस में आत्मीय संबन्ध था। गुरु को अपने शिष्य के सद्व्यवहार और विद्वता पर गर्व था। शिष्य को अपने गुरु की आध्यात्मिकता और वैराग्य से लगाव था। इसलिए दोनों एक-दूसरे का बहुत आदर करते थे। कहते हैं कि जब निजामुद्दीन औलिया का देहान्त हुआ तो उस समय अमीर खुसरो गयासुद्दीन तुगलक के साथ बंगाल गये हुए थे। उन्हें जब अपने गुरु के मृत्यु की खबर मिली तो वे बंगाल से रोते-बिलखते हुए आये और पागल की भाँति निम्न दोहा पढ़ते हुये उनकी कब्र पर बेहोश होकर गिर पड़े-

गोरी सोवे सेज पर, मुख पर डारे केस।

चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।।

इस घटना के पश्चात् खुसरो के पास जो कुछ धन-सम्पत्ति थी उसको गरीबों में बाँट दिया और स्वयं काला कपड़ा पहनकर औलिया की मजार पर बैठे रहते थे। गुरू की मृत्यु से वे इतने आहत हुए की छः माह के अंदर ही स्वयं स्वर्ग सिधार गये (1325 ई.)। दोनों गुरू शिष्य की कब्र दिल्ली में आस-पास बना दी गयी। आज भी हर साल उनकी कब्र पर उर्स होता है और मेला लगता है।

17.3.2 खुसरो का साहित्य-

खुसरो हिन्दी साहित्य के आदिकालीन कवियों में प्रमुख हैं। आदिकालीन साहित्य में सर्वप्रथम उन्हीं की रचनाओं में खड़ी बोली का प्रयोग मिलता है। उन्होंने विभिन्न प्रकार के पुस्तकों की रचना की है। इसमें इतिहास, जीवनी, साहित्य प्रमुख हैं। खुसरो फारसी के उच्चकोटि के विद्वान थे और फारसी में उन्होंने बहुत-सी मसनवियों की रचना की है। इन मसनवियों के माध्यम से उन्होंने लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम का संदेश दिया है। उनकी कुछ प्रमुख मसनवियाँ इस प्रकार हैं- किरानुस्सादैन, नुहसिपहर, तुलकनामा, खम्स-ए- खुसरो ये सभी मसनवियाँ फारसी में लिखी गयी हैं। परन्तु इनका प्रभाव परवर्ती हिन्दी प्रेमाख्यान परम्परा के साहित्य पर देखा जा सकता है। इस दृष्टिकोण से ये महत्त्वपूर्ण हैं। हिन्दी में खुसरो की तीन रचनाओं का उल्लेख किया जाता है- खालिकबारी, हालात-ए-कन्हैया और नजराना -ए-हिन्दी। इसमें से मात्र खालिकबारी ही उपलब्ध है। अन्य पुस्तकों का सिर्फ नामोल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त हिन्दी में खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ प्रचलित हैं। खालिकबारी के भी सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का विचार है कि यह प्रामाणिक रचना नहीं है।

17.4 अमीर खुसरो: पाठ एवं आलोचना

17.4.1 अमीर खुसरो: पाठ

अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहे, पहेलियाँ, गीत, दो सुखने, ढकोसले इत्यादि की रचना की है। खुसरो को हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं का प्रथम कवि माना जाता है। वास्तव में वे फारसी के प्रसिद्ध कवि हैं। फारसी साहित्य में उनकी गणना महाकवि फिरदौसी, शेख सादिक और निजामी के साथ की जाती है। फलस्वरूप उनकी कविताओं में फारसी शब्दों की बहुलता पायी जाती है, वैसे उन्होंने कई स्थलों पर स्वयं को हिन्दी का कवि माना है-

तुर्क-ई-हिंदुस्तानिम मन, दर हिंदवी गोयम जवाब

शक्कर-ई-मिस्त्री न दारम कज़ अरब गोयम सुखन।

(अर्थात् मैं हिन्दुस्तानी तुर्क हूँ, मैं हिन्दवी में जवाब देता हूँ, मेरे पास कोई मिश्री शक्कर नहीं जिससे मैं अरबों की बात करूँ)।

दोहे- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से दोहों की भी रचना की है। इन दोहों की विशेषता है कि उसका सामान्य अर्थ करेंगे तो उसमें श्रृंगार की प्रधानता दिखायी पड़ेगी परन्तु जब उसे सूफी मत के आलोक में देखेंगे तो उसमें आध्यात्मिक संदेश दिखायी पड़ेगा-

1. गोरी सोवे सेज पर मुख पर डारे केस,

चल खुसरो घर आपनें रैन भई चहुँ देस।

(यह दोहा खुसरो ने अपने गुरू औलिया की मृत्यु के पश्चात् लिखा था। इसका आशय यह है कि इस संसार में इंसान का एकमात्र मार्गदर्शक गुरू होता है। उसके न रहने पर मनुष्य के लिये सम्पूर्ण संसार अंधकारमय हो जाता है।)

2. खुसरो रैन सुहाग की जागी पी के संग,

तन मेरा मन पीऊ का, दोउ भये एक रंग।

(यह दोहा सूफी मत के अनुसार आत्मा और परमात्मा के मिलन का संदेश देता है। आत्मा और परमात्मा के परस्पर साक्षात्कार के पश्चात् उनके मध्य का द्वैत समाप्त हो जाता है और साधक मस्त रहने लगता है। सूफी साहित्य की विशेषता होती है कि इसमें लौकिक स्त्री-पुरुष प्रेम के माध्यम से

कवि अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति करता है। उक्त दोहे में भी खुसरो ने इसी शैली का प्रयोग किया है।)

गज़ल- अमीर खुसरो को गजल का जन्मदाता माना जाता है। उनके हिन्दी गजलों में अभिनव प्रयोग देखने को मिलता है। इसमें उन्होंने एक पंक्ति फारसी की तो दूसरी पँक्ति साधारण बोलचाल की हिन्दी में लिखा है। ऐसे में उन्होंने अरबी, फारसी और हिन्दी के शब्दों का प्रयोग किया है-

जे हाल मिस्कीं मकुन लगाजल दुराय नैना बनाए बतियाँ।

के तावे हिजरां नदारम अय जाँ न लेहु कहे लगाय छतियाँ।।

शबाने-हिजराँ दराज चूँ जुल्फ बरोजे वसलत चूँ उम्र कोताह।

सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूं अंधेरी रतियाँ।।

(अर्थात् आँख छिपाकर और बातें बनाकर दुखियों की दशा की अवहेलना मत करो। ऐ मेरी जान, मैं विरह के सहने में असमर्थ हूँ। इसलिए क्यों नहीं छाती से लगा देतीं। विरह की राते जो जुल्फ की तरह लम्बी हैं, मिलन का दिन उम्र की तरह छोटा है। ये सखी ! जो मैं पिया को न देखूँ तो अंधेरी रातें कैसे काटूँ?)

पहेलियाँ- अमीर खुसरो ने भारतीय लोक परम्परा में प्रचलित पहेली शैली को भी अपनाया है। पहेली खेल की तरह होता है जिसमें किसी वस्तु के समस्त लक्षण बता दिये जाते हैं, उत्तर देने वाले को लक्षण के आधार पर वस्तु को पहचानना होता है, जैसे-

1. श्याम बरन पीतांबर कांधे , मुरलीधर नहीं होय।

   बिन मुरली वह नाद करता है, बिरला बूझे कोय।। **(भौरा)**

2. एक पुरुष बहुत गुन भरा, लेटा जागे सोवे खड़ा।

   उलटा होकर डाले बेल, यह देखो करतार का खेल ।। **(चरखा)**

3. फारसी बोली आईना, तुर्की बोली पाईना।

   हिन्दी बोली आरसी आये, मुँह देखो जो उसे बताये।। **(दर्पण)**

मुकरिया- मुकरना अर्थात् नकारना, लोक प्रचलित वह शैली जिसमें उत्तर को नकार कर कुछ नवीन अर्थ प्रस्तुत करना। अमीर खुसरो ने बहुत-सी मुकरियों को भी लिखा है। यह भी पहेली के ही समान होता है। परन्तु इसका उत्तर कुछ अटपटा होता है, जिससे पहेली से इसमें भिन्नता आ जाती है-

1. वह आवे तब शादी होय। उस बिन दूजा और न कोय।

   मीठे लागैं वाके बोल। ऐ सखि साजन! ना सखि ढोल।।

2. सारी रैन मोरे संग जागा। भोर भई तब बिछुड़न लागा।

   वाके बिछुड़त फाटे हिया। ऐ सखि साजन! ना सखि दिया।।

दोसुखना- दोसुखने में प्रश्नकर्ता किसी ऐसे दो प्रश्नों को पूछता है जिसका उत्तर एक ही होता है। उदाहरणार्थ-

1. जूता क्यों न पहना? समोसा क्यों न खाया? - तला न था।

2. पंडित क्यों पियासा? गदहा क्यों उदासा? - लोटा न था।

3. पान सड़ा क्यों? घोड़ा अड़ा क्यों? - फेरा न था।

गीत- अमीर खुसरो ने हिन्दी भाषा में बहुत-से गीतों की भी रचना की है। इसमें कुछ गीतों के अर्थ तो लौकिक हैं जबकि कुछ गीतों का अर्थ सूफी विचारधारा के अनुसार आध्यात्मिक है। उदाहरणार्थ-

1. बहुत कठिन है डगर पनघट की-

   कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

   मोरे अच्छे निजाम पिया-कैसे मैं भर लाऊँ मधवा से मटकी-

   जरा बोलो निजाम पिया-पनिया भरन को मैं जो गयी थी-

   दौड़ झपट मोरी मटकी पटकी-बहुत कठिन है-

   खुसरो निजाम के बल-बल जाइये-लाज राखो मेरे घूँघट पट की-

2. काहे को ब्याही बिदेस रे-लयि बाबुल मोरे।

   भैया को दीनो महल दोमहलों , हमको दिया परदेस-

लखि बाबुल मोरे।

हम तोरे बाबुल बेले की कलियाँ, घर-घर माँगी जाये रे

लखि बाबुल मोरे।

डोली के परदा उठाकर जो देखा, आया पराया देस रे

लखि बाबुल मोरे।

अमीर खुसरो यूँ कहें तेरा धन-धन भाग सुहाग रे

लखि बाबुल मोरे।

निम्नलिखित गीत के संदर्भ में कहा जाता है कि खुसरो ने इसमें अपने गुरू औलिया के साथ दाम्पत्य भाव का रूपक बाँधकर आत्मा और परमात्मा का संबन्ध स्थापित किया है-

परबत बास मंगाव मोरे बाबुल नीका मड़ुवा छवावो री।
डोलिया फंदाय पिया ले चले हैं, अब संग कोई नहीं आवरी।।
गुडिया खिलौना ताक में रह गए, नहीं खेलन को दाव री।
निज़ामदीन औलिया बहिया पाकर चले , धरिहों वाके पाव री।।

17.4.2 आलोचना

हिन्दी भाषा और साहित्य के क्षेत्र में खुसरो का महत्वपूर्ण योगदान है। हिन्दी साहित्य से आशय उसकी अन्य क्षेत्रीय भाषाओं- ब्रज, अवधी, बुन्देली, भोजपुरी, मैथिली और खड़ी बोली का भी साहित्य है। परन्तु आज हिन्दी का प्रतिनिधित्व खड़ी बोली हिन्दी करती है। इस भाषा का साहित्य के रूप में पहला प्रयोग अमीर खुसरो के यहाँ मिलता है। विद्वानों का विचार है, इतनी परिमार्जित भाषा का प्रयोग साहित्य में अचानक नहीं हो सकता। खुसरो से पहले भी इसका प्रयोग होता रहा होगा, परन्तु जो साक्ष्य अभी प्राप्त होते हैं, उसमें सर्वाधिक प्राचीन साहित्य खुसरो का ही है। अतः जब तक अन्य कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता तब तक खुसरो को खड़ी बोली का पहला साहित्यकार माननें में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

खड़ी बोली को हिन्दवी, देहलवी अथवा हिन्दी नाम से सर्वप्रथम खुसरो ने ही सम्बोधित किया है- 'तुर्के हिन्दुस्तानियम मैं हिन्दवी गोयम जवाबी'। खुसरो ने खड़ी बोली का नामकरण 'हिन्दी' अपने ग्रन्थ 'खालिकबारी' में किया है। इस पुस्तक में 'हिन्दवी' शब्द 30 बार और हिन्दी शब्द 5 बार प्रयुक्त किया गया है। कुछ लोगों का विचार है कि इतिहास प्रसिद्ध जिस खुसरो का उल्लेख किया

जाता है, वह हिन्दी का कवि था ही नहीं। उनके नाम से कुछ रचनाएँ प्रचलित हो गई हैं, जिन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। वास्तविकता क्या है, इसे प्रमाणिक ढंग से नहीं सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु जो कुछ साक्ष्य प्राप्त होते हैं, उनके आधार पर हम इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि खुसरो खड़ी बोली के आरम्भिक कवि थे ।हिन्दी भाषा से अमीर खुसरो का गहरा लगाव था, इसका प्रमाण उनके इस उद्धरण में निहित है-''हिन्दी फारसी से किसी प्रकार कम नहीं है। जो लोग हिन्दी का महत्व कम समझते हैं, वे नादान हैं। हिन्दी अरबी के समान है, क्योंकि इन दोनों में कोई मिश्रित नहीं है। शब्द-भण्डार और विचारों की दृष्टि से भी हिन्दी कम नहीं है। हिन्दी में बहुत-से ऐसे शब्द हैं, जो छोटे होने पर भी अर्थ की गम्भीरता रखते हैं। वे एक बूँद में समुद्र की शक्ति रखने वाले हैं। जिन लोगों ने हिन्दुस्तान की गंगा को नहीं देखा है, वे नील और दजला पर अभिमान कर सकते हैं। जिन्होंने केवल बुलबुल की सुन्दरता को देखना सीखा है, वे हिन्दुस्तान के तोते के महत्व को क्या समझ सकते हैं? मैं इन तीनों भाषाओं को जानता हूँ, इसलिए ऐसा कह रहा हूँ।''

अमीर खुसरो की एक महत्वपूर्ण पुस्तक 'खालिकबारी' है। यह शब्दकोश है। इसमें उन्होंने काव्यात्मक ढंग से अरबी-फारसी-हिन्दी भाषाओं का अर्थ बतलाया है। इस पुस्तक की रचना उन्होंने मुहम्मद बिन तुगलक के लड़के को भाषा का ज्ञान कराने के लिये किया था। इस पुस्तक की प्रमाणिकता विवादास्पद है। विवादास्पद होने के बावजूद इस पुस्तक का बहुत महत्व है। आज से आठ-नौ सौ वर्ष पहले एक ऐसी पुस्तक जिसके माध्यम से व्यक्ति अरबी, फ़ारसी और हिन्दी का अर्थ समझ सके महत्वहीन नहीं हो सकती। हिन्दी भाषा के संबंध में इस पुस्तक में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण और क्रिया के कालगत रूपों की प्रमाणिक जानकारी मौजूद है।खालिकबारी में हिन्दी भाषा के जो छंद प्राप्त होते हैं उनमें लयभंग है। फारसी भाषा में जो छंद हैं, उनकी लयात्मकता मौजूद है। इस आधार पर स्पष्टतः हम कह सकते हैं कि इस पुस्तक की रचना सर्वप्रथम फारसी में हुयी थी, फिर आवश्यकता पड़ने पर उसे हिन्दी में परिवर्तित किया गया। छंदों की लयात्मकता और नाद सौन्दर्य के आधार पर यह बात प्रमाणित होती है कि इसका रचयिता कवि था। इसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

रसूल पैगम्बर जान बसीठ। यार दोस्त बोले जो ईठ।।
मर्द मनस जन है इस्तरी। कहत अकाल बबा है मरी।।
बिया बिरादर आव रे भाई। बिनशी मादर बैठरी माई।।
तुरा बुगुफतम मैं तुझ कह्या। मुजा बिमदीतू कित रह्या।।
राह तरीक सबील पहचान। अर्थ तिहू का मारग जान।।

अमीर खुसरो की पहेलियों का भारतीय संदर्भ में काफी महत्व है। इसके माध्यम से हम भारतीय संस्कृति की झलक पाते हैं। इसमें लोक-परम्परा, प्रकृति-चित्रण , मनुष्य स्वभाव, जीव-जन्तु, जाति-बिरादरी, तीज-त्यौहार इत्यादि का वर्णन किया गया है। श्रृंगार भारतीय साहित्य का महत्वपूर्ण वर्ण-विषय रहा है। इसमें श्रृंगार-प्रसाधनों का सूक्ष्म निरीक्षण करके उसकी अलग-अलग विशेषता प्रकट

करना खुसरो की पहेलियों में दिखायी पड़ता है। काजल को महत्त्वपूर्ण श्रृंगार-प्रसाधन माना जाता है। इसके संदर्भ में खुसरो ने एक पहेली की रचना की है-

आदि कटे से सबको पाले। मध्य कटे तो सबको मारे।।

अंत कटे तो सबको पीठा। खुसरो वाको आंखो दीठा।।

मुस्लिम साम्राज्य में पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन था। पर्दे भी रंग-बिरंगे हुआ करते थे। वे आवरण का कार्य तो करते ही थे साथ-साथ सज्जा और श्रृंगार के साधन के रूप में भी स्वीकृत करते थे। पालकी में बैठी स्त्री को पर्दे के भीतर रखा जाता था, वह पर्दा भी अत्यंत आकर्षक होता था। राह चलता व्यक्ति उसके कारण आकृष्ट हो जाता था। श्रृंगार के लिये स्त्रियाँ हीरे, मोती, जवाहरात का बहुत उपयोग करती थी। इसका वर्णन खुसरो की पहेलियों में मिलता है। खुसरो ने अपनी एक पहेली में स्नानागार का एक मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है-

शुभ के कारज बना एक मंदर, पवन न जावे वाके अंदर।

इस मंदर की रीति दिवानी, बिछावै आग और ओढ़े पानी।।

खुसरो की पहेलियों में भारतीय जातियों का और उनके व्यवसाय का वर्णन किया गया है। भारतीय समाज की विशेषता है कि प्रत्येक जातियों का अपना परंपरागत व्यवसाय होता है। इस व्यवसाय का बहुत बारीक विश्लेषण खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से किया है। इन जातियों में मुख्यतः बढ़ई, लुहार, धुनिया, कुम्हार, बरई, नाई हैं। इन जातियों के जीविकोपार्जन के लिये अपने कुछ औजार होते हैं। इनका वर्णन खुसरो ने इतनी प्रमाणिकता के साथ किया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि खुसरो का इनके साथ गहरा लगाव रहा होगा। इन जातियों की विशेषताओं को सूक्ष्मता के साथ प्रकट करने पर यह बात सिद्ध होती है कि खुसरो का लोकानुभव गहरा था।कुम्हार जाति उसके चाक और डोरे के संदर्भ में खुसरो ने अलग से एक-एक पहेली की रचना की है। सर्वप्रथम कुम्हार की विशेषता बतलाते हुये लिखा है- कीली पर खेती करै औ पेड़ में दे दे आग।
रास ढोवै घर में राखे , वहाँ रह जाय राख।।
कुम्हार के चाक का वर्णन करते हुये लिखा है-
चार अंगुल का पेड़ सवा मन का छत्ता।
फल लगे अलग-अलग पक जाए इकट्ठा।।
कुम्हार के डोरे का वर्णन करते हुये लिखा है-
पानी में निसि दिन रहे जाके हाड़ न माँस।
काम करे तलवार का फिर पानी में बास।।

अमीर खुसरो ने अपनी पहेलियों में जीव-जन्तुओं का भी वर्णन किया है। इनमें मुख्यतया मोर, मधुमक्खी, भौंरा, बया का घोसला, बीर बहूटी और बिच्छु हैं। अमीर खुसरो को भारतीय पक्षियों में मोर अत्यधिक प्रिय है। यह भारतीय संस्कृति का प्रतीक भी है। इसका वर्णन करते हुए खुसरो ने लिखा है-

एक जानवर रंग-रंगीला, बिन मारे वह रोए।

उसकी मां पर तीन तलाकें जो बिना बताए सोए।।

मधु के छत्ते का वर्णन करते हुए लिखा है-

एक गांव सधा कूएं, कुएं कूएं पनिहार।

मूरख तो जाने नही चतुरा करै विचार।।

भौरा का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

श्याम बरन पीताम्बर बांधे मुरलीधर ना होय।

बिन मुरली वो नाद करता है बिरला बूझे कोय।।

बिच्छू के विषय में लिखा है-

आगे से वह गाठ-गठीला पीछे से वह टेढ़ा।

हाथ लगाये कहर खुदा का बूझ पहेला मेरा।।

इसी के साथ उन्होंने भारतीय वृक्षों और वनस्पतियों का भी वर्णन किया है। आम का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है-

एक पुरुष जब मद पर आवै, लाखों नारी संग लिपटावै।

जब ओ नारी मद पर आवै, तब ओ नारी नर कहलावै।।

जामुन के बारे में लिखा है-

काजल की कजरौटी उधौ का श्रृंगार।

हरी डार पर मैना बैठी है कोई बूझनहार।।

निबौरी के बारे में लिखा है-

तरूवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया।

बाप का उससे नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।।

आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली गोरी।

अमीर खुसरो यूं कहै, अपनो नाम निबौरी।।

इसी प्रकार खुसरो ने मक्का और अरहर जैसी फसलों के विषय में भी लिखा है। अरहर को छरहरी नायिका के रूप में चित्रित करते हुए लिखा है-

गोरी सुन्दर पातली के सर कारे रंग।

ग्यारह देवर छोड़के चली जेठ के संग।।

इस दोहे में जेठ शब्द का 'श्लेष' प्रयोग किया गया है। एक जेठ तो बारह महीनों का जेष्ठ है। दूसरा पति का बड़ा भाई है। अरहर अषाढ़ में बोयी जाती है और जेष्ठ में काटी जाती है। इन पंक्तियों में यही दर्शाया गया है कि वर्ष के जो ग्यारह महीने हैं वो अरहर के देवर की तरह हैं। इसके अतिरिक्त जो दूसरा अर्थ ध्वनित हो रहा है। उसके अनुसार उस समय स्त्रियाँ अपने पति को छोड़कर जेठ के साथ भी निकल जाती थी। इसी तरह अमीर खुसरो ने दैनिक जीवन की ढेर सारी वस्तुओं को भी अपनी पहेलियों की विषय-वस्तु बनाया है। ताला का वर्णन करते हुये लिखा है-

बात की बात ठिठोली की ठिठोली।

मरद की गांठ औरत ने खोली।।

इसी तरह दियासलाई का वर्णन किया है-

पी के नाम से बिकत है, कामिनी गोरी गात।

एक बेर दो बेर सती भई, दिया न पूछे बात।।

भारतीय परम्परा में हुक्का पीना और सुरती खाना नाश के दो व्यसन है। इन पर भी अमीर खुसरो ने पहेलियों की रचना की है-

अग्निकुंड में घर किया और जल में किया निवास।

परदे परदे आवत है अपने पिया के पास।।

खुसरो के साहित्य में भारतीय लोकतत्त्व का विशिष्ट निरूपण किया गया है। उन्होंने अपने समकालीन रीति-रीवाज और परम्पराओं को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। इसी में एक प्रमुख परम्परा 'बाबुल गीत' की रही है। ग्रामीण क्षेत्र में लड़कियाँ सर्वप्रथम जब अपने पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाती हैं, उस समय उनका रोना एक अजीब करूणामय परिस्थिति का निर्माण करती है। यह 'बाबुल गीत' आज भी उत्तरी भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में विदाई के समय गाया जाता है। इसी में से एक प्रसिद्ध 'बाबुल गीत' इस प्रकार है-

'काहे को बियाहे परदेस,

सुन बाबुल मोरे।

भइया को दीहे बाबुल महला-दुमहला,

हमके दिहे परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे घूंटे की गइया,

हांका-हूंकी जाऊँ परदेस, सुन बाबुल मोरे।

मैं त बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया,

रात बसे उड़ जाऊँ, सुन बाबुल मोरे।.....'

यह स्वयं में एक आश्चर्य की बात है कि राजाओं-महाराजाओं के साथ महलों एवं नगरों में रहने वाले खुसरो को इन ग्रामीण परम्पराओं एवं जनसामान्य की मनोदशा को परखने की अकूत शक्ति थी। खुसरो के समय चिकित्सा पद्धति इतनी सर्वजन सुलभ न थी तो लोग वैद्य एवं हकीमों के पास जाया करते थे और वे ग्रामीण जड़ी-बूटियों के माध्यम से उपचार करते थे। खुसरो ने अपनी पहेलियों के माध्यम से रोगों के उपचार हेतु जड़ी-बूटियों का नुख्शा भी बतलाया है-

लोध फिटकरी मुर्दासंख। हल्दी जीरा यक-यक टंका।।

अफयून चना भर मिर्चे चार। उरद बराबर थोथा डाल।।

पोस्त के पानी पुटली करे। तुरत पीर नैनो की हरे।।

निःसंदेह पहेलियाँ और मुकरियाँ खुसरो की प्रसिद्धि का कारण है। इन पहेलियों और मुकरियों के अतिरिक्त खुसरो ने पर्व, उत्सव एवं ऋतुओं के अनुकूल गीतों की रचना की है। भारतीय परम्परा में खुसरो का और महत्वपूर्ण योगदान संगीत के क्षेत्र में है। उन्होंने भारतीय संगीत में कव्वाली के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कव्वाली मुख्यतः अरब देश के संगीत की पद्धति थी, सूफी साधक इसके माध्यम से अपने आराध्य को खुश करते थे अथवा उसके मिलन-विरह के गीत गाया करते थे। अमीर खुसरो ने हिन्दी में कव्वालियों की रचना करके उसे लोकप्रिय बनाया। उनके विषय में कहा जाता है कि वे न सिर्फ कव्वालियों के रचनाकार थे अपितु एक निपुण गायक एवं संगीतकार भी थे। उन्होंने अपनी पुस्तक 'रसापलुलएजाज' में भारतीय संगीत और संगीतकारों का उल्लेख किया है।

अमीर खुसरो ने जिस हिन्दी का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, उसका स्वरूप तेरहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध एवं चौदहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है। यह भाषा मध्य देश के विशाल भूखण्ड में प्रचलित थी। परम्परा से राजस्थानी और ब्रज भाषा में साहित्य की रचना होती थी। परन्तु सम्पर्क का माध्यम खड़ी बोली थी। खुसरो ने जनसामान्य में प्रचलित इस लोक भाषा का साहित्य में प्रयोग करके एक अभिनव शुरूआत की थी। अमीर खुसरो फारसी के प्रकाण्ड पण्डित थे। फारसी भाषा में उन्होंने अनेकानेक रचनाएँ की हैं। मुसलमान और फारसी भाषा के ज्ञाता होते हुये भी अमीर खुसरो का जन्म भारत में हुआ था। उनको भारतीय प्रकृति, परिवेश, भाषा, संस्कृति और रीति-रीवाज से अनन्य लगाव था। वे अपनी रचनाओं में भारतीय भाषाओं, पर्वतों, नदियों, ऋतुओं पर्वों और उत्सवों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे भारतवर्ष को अपना देश मानने के साथ विश्व के अन्य देशों से इसे उत्कृष्ट बतलाया है- ''भारत संसार के सब देशों से श्रेष्ठ और खुरसान, कंधार, रोम और ईरान की अपेक्षा अत्यधिक सुन्दर है। भारत के फूल, भारत के नर-नारी, भारत के पशु-पक्षी अद्वितीय हैं। उनकी तुलना किसी और देश से नहीं की जा सकती, भारत तो स्वर्ग से भी रमणीय स्थान है- भारत का पक्षी मोर अपनी सुन्दरता में अप्रतिम है।'' इस तरह जाति, धर्म, देश, भाषा से ऊपर उठकर खुसरो ने सांस्कृतिक समन्वय का कार्य अपनी रचनाओं के माध्यम से किया है। इससे भी अधिक भारत देश से अपना लगाव प्रदर्शित करके खुसरो ने सच्चे राष्ट्रभक्त या देश-भक्त होने का प्रमाण दिया है।

बोध प्रश्न 1

क . रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. अमीर खुसरो का जन्म.....नामक स्थान पर हुआ। (पटियाला/आगरा/दिल्ली)

2. अमीर खुसरो के गुरु का क्या नाम था?

   (1) कबीर (2) निजामुद्दीन औलिया (3) ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती

3. अमीर खुसरो की रचना कौन-सी है?

(1) पृथ्वीराज रासो (2) खालिकबारी (3) कीर्तिलता

17.5 सारांश

इस इकाई में आपने अमीर खुसरो से संबन्धित विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप बता सकते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में खुसरो का क्या योगदान एवं महत्त्व है। साथ ही आप ने जाना खुसरो जिस समय रचना कर रहे थे , वह राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से काफी अस्थिरता का समय था। परन्तु उन्होंने परिस्थितियों के समक्ष आत्मसमर्पण नहीं किया अपितु सभी चुनौतियों का साहस के साथ सामना किया। खुसरो एक साथ सैनिक, कवि, सूफी साधक एवं कुशल राजनीतिज्ञ थे । उनकी रचनाओं को पढ़ने पर आपको लोकव्यवहार का ज्ञान होगा, श्रृंगार के छींटे पढ़ेंगे , सूफी प्रेम का एहसास होगा।

खुसरो के साहित्य में ही आपको सर्वप्रथम खड़ी बोली हिन्दी का परितिष्ठित रूप दिखायी पड़ेगा। इस इकाई में आपको उक्त भाषा के कुछ नमूने भी दिखायी पड़ेगें।

17.6 शब्दावली–

हिन्दवी: भारत में रहने वाले मुसलमान फारसी लेखक हिन्द की देशी भाषा के लिए 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग करते हैं।

मुकरियाँ: मुकरना का अर्थ नकारना होता है। एक पद्य जिसमें पहले हाँ कहा जाए फिर उसका खण्डन किया जाय। इस लोकशैली का प्रयोग अमीर खुसरो ने अपने साहित्य में किया है।

खलिकबारी: अरबी, फारसी और हिन्दी का यह पद्यमय कोश है। इसकी रचना खुसरो ने की हे। इसके माध्यम से फारसी वाले हिन्दी सीखते थे और हिन्दी वाल्ो फारसी सीखते थे।

17.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर –

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

1. पटियाली

2. निजामुद्दीन औलिया

3. खालिकबारी

17.8 उपयोगी पाठ्य सामग्री –

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, वाराणसी।

डॉ. बच्चन सिंह,हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।

17.9 निबंधात्मक प्रश्न–

1. अमीर खुसरो का जीवन परिचय दीजिए तथा सिद्ध कीजिए अमीर खुसरो हिन्दु-मूस्लिम एकता के अग्रदूत थे।

3. अमीर खुसरो का साहित्यिक परिचय देते हुए खड़ी बोली के विकास में उनके योगदान का मूल्यांकन कीजिए।